तंत्री तथा संपादक :
दीपक देसाई
वर्षः २, अंक : ५
अखंड क्रमांक : १७
मार्च २००७

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सीटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ वे,
पो.ओ.: अडालज,
जि.: गांधीनगर-३८२४२१
फोन : (०७९)३९८३०१००
e-mail :
dadavani@dadabhagwan.org
अहमदाबाद : (०७९) २७५४०४०८, २७५४३९७९
मुंबई : (०२२) २४१३७६१६
सुरत : (०२६१) २५४४९६४
राजकोट : (०२८१) २४६८८३०
U.S.A. : 785-271-0869
U.K.: 020-8204-0746
Website : www.dadashri.org
www.dadabhagwan.org

Publisher, Owner & Printed by :
Deepak Desai on behalf of
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh. Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.
Printer/Press :
Mahavideh Foundation
Basement, Parshvanath
Chambers, Nr.RBI,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता फी)
१५ साल का
भारत : ८०० रूपया
यु.एस.ए. : १०० डॉलर
यु.के. : ७५ पाउन्ड
वार्षिक
भारत : १०० रूपया
यु.एस.ए. : 10 डॉलर
यु.के. : 7 पाउन्ड
भारत में D.D. / M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के
नाम से भेजे।

दादावाणी

स्वार्थ-परमार्थ : सांसारिक, धार्मिक

संपादकीय

लोक दृष्टि और ज्ञानी की दृष्टि में आसमान-जमीन का अंतर होता है। लोग क्रियाएँ देखते हैं। ज्ञानी भाव का मोल करते हैं। एक क्रिया जिसे स्वार्थ भाव से करने पर पाप बँधता है, वही क्रिया यदि निःस्वार्थ भाव से की जाये तो पुण्य बंधता है। क्रियाएँ यहीं की यहीं पड़ी रहती हैं और पाप-पुण्य साथ आते हैं। पाप-पुण्य रूपी कर्म फल भुगतने फिर संसार में आना पड़ता है। इसलिये प्रत्येक कार्य के पीछे जो भाव होता है उसे सुधारिये। भाव बिगड़ने नहीं देना! दान करने जैसे पुण्य कार्य में भी फल प्राप्ति का स्वार्थ निहित रहता है।

अज्ञानता के कारण अपने आपको पहचाना नहीं और जो नाम मिला, देह मिली उसी रूप में रहकर उसे ही खुद समझा। परिणाम स्वरूप स्वार्थ बुद्धि पैदा हुई, निजी सुख हेतु ही उस बुद्धि को प्रयोग में लाया। औरों का जो होना हो वह हो, पर खुद का लाभ होना चाहिए ऐसी स्वार्थ बुद्धि के कारण अंतर शांति गवाँ दी। ऐसी स्वार्थ बुद्धि मोक्षमार्ग में भयानक रूप से बाधक होती है। जिन्हें स्वार्थ बुद्धि वश अपना समझा वे देह, बीवी-बच्चे, आत्मा की अपेक्षा पराये हैं, मतलब वह स्वार्थ तो परार्थ हुआ। (जैसे) गैया को दुहकर कुत्ते को पिलाया। लोगों का नुकसान करके धन जमा किया और मोह वश बच्चों के नाम करके, बिना भुगते ही पापकर्म की गठरी साथ लिये, अर्थी में सवार होकर चल दिया।

बुद्धि तो 'मेरी-तेरी' का भेद करवाती है। वह तो ज्ञानी पुरुष बुद्धि से परे ज्ञान दशा में होते हैं, उनको बुद्धि खलास हो गई होती है। ऐसे ज्ञानी से ज्ञान प्राप्ति होने पर आत्मदशा प्राप्त होती है, तभी ज्ञान के कारण अभेदता उत्पन्न होती है।

धर्म में भी यदि गुरु-शिष्य के बिच ज़रा-सा भी स्वार्थ संबंध रहा तो दोनों का नुकसान होगा।

भगवान की भक्ति में भी यदि कोई सांसारिक स्वार्थ रहा तो वही भक्ति, भगवान के साक्षात्कार में बाधा रूप होगी।

सांसारिक स्वार्थ कहाँ तक बना रहता है? जहाँ तक स्वरूप की अज्ञानता है और उसके कारण क्रोध-मान-माया-लोभ पैदा हुए हैं, जिसके कारण सांसारिक स्वार्थ बना रहता है। जब अपने स्वरूप का भान होता है कि वास्तव में 'मैं कौन हूँ' तभी अपना सच्चा स्वरूप जान पड़ता है कि मैं सचमूच कौन हूँ, और तभी सच्चा स्व अर्थ माने स्वार्थ उत्पन्न होता है, जो स्व-पर कल्याणकारी होता है।

संसार में किसी के प्रति ज़रा-सा भी स्वार्थ रखने योग्य नहीं है। केवल ज्ञानी पुरुष के प्रति स्वार्थ रखने योग्य है, वह भी पूर्णता होने के हेतु ही रखना चाहिए, तभी उससे आत्यंतिक कल्याण की प्राप्ति होती है।

प्रस्तुत संकलन में परम पूज्य दादाश्री के श्रीमुख से प्रकट हुई ज्ञानवाणी में सांसारिक और धार्मिक स्वार्थ-परमार्थ संबंधी अनूठे रहस्य समन्वित हुए हैं, जो साधकों को सच्ची दृष्टि प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होंगे।

दीपक देसाई ...

पाठकों से...

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रुपांतर है। कोष्ठक में दिये गये शब्द या तो अंग्रेजी शब्द का अर्थ है अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किये गये वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। पाठक जहाँ पर भी चंदुभाई नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर कोई बात आप समझ न पायें तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधार कर समाधान प्राप्त करें। भाषांतर में कोई कमी नज़र आये तो हमें सूचित करने की कृपा करें। ऐसी क्षतियों के लिये हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

स्वार्थ, परमार्थ : सांसारिक, धार्मिक

नि:स्वार्थ भाव वहाँ पुण्य

प्रश्नकर्ता : पुण्य कर्म और पाप कर्म कैसे बँधते हैं?

दादाश्री : दूसरों को सुख देने का भाव किया, उससे पुण्य बँधता है और दु:ख देने का किया उससे पाप बँधता है। केवल भाव से ही कर्म बँधते हैं, क्रिया से नहीं। क्रिया में ऐसा हो कि न भी हो, पर भाव में जैसा होगा वैसा कर्म बँधता है। इसलिये भाव बिगाड़ना नहीं।

कोई भी कार्य जब स्वार्थ भाव से किया जाये तब पाप कर्म बँधता है और नि:स्वार्थ भाव से किया जाये तब पुण्य बँधता है। पर हैं तो दोनों ही कर्म न? पुण्यकर्म का फल सोने की बेड़ी और पापकर्म का फल लोहे की बेड़ी। पर है तो दोनों ही बेड़ियाँ न?

कमाई यहाँ रही, गुनाह साथ आयें

परदेश की कमाई परदेश में ही रहेगी। ये मोटर-बंगले, मिलें, बीवी-बच्चे सब यहाँ छोड़कर जाना होगा। अंतिम स्टेशन पर तो किसी के बाप की नहीं चलती न? केवल पुण्य और पाप साथ ले जाने देंगे। यदि सरल भाषा में कहूँ तो यहाँ जो जो गुनाह किये हैं उनकी दफ़ाएँ (सारे गुनाह) साथ आयेंगी। उन गुनाहों की कमाई यहाँ की यहाँ रहेगी और फिर मुकदमा चलेगा। दफ़ाओं के अनुसार नई देह प्राप्त करके नये सिरे से कमाई करके कर्ज चुकता करना पड़ेगा। इसलिये पहले से सीधे हो जाइये न? 'स्वदेश' (आत्मा) में तो बहुत ही सुख है पर 'स्वदेश' देखा ही नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : मनुष्य जनम में सत्कार्य करने पर देहविलय के बाद आत्मा की क्या परिस्थिति होती है?

दादाश्री : सत्कार्य करने पर पुण्य बँधता है, जिसके क्रेडिट होने पर, मनुष्य में अच्छे घर में जनम होता है। राजा होता है या प्रधानमंत्री होता है। इससे भी ज्यादा सत्कार्य होने पर देवगति होती है। सत्कार्य करे वह क्रेडिट कहलाये, फिर क्रेडिट भुगतने जाता है। और बुरे कार्य करने पर उसे डेबिट भुगतने जाना पड़ता है। दो पैर के चार पैर होते है! यह आप एस.इ. सुप्रिटेन्डेन्ट हुए हैं यह क्रेडिट के कारण! और डेबिट होने पर मिल में नौकरी करनी पड़े। सारा दिन मेहनत करने पर भी गुजारा नहीं होता। मतलब इन क्रेडिट-डेबिट के आधार पर चार गतियाँ मिलती हैं और यदि क्रेडिट-डेबिट नहीं हो तो आत्मा मोक्षगति में जाता है।

दान, स्वार्थ हेतु

प्रश्नकर्ता : मनुष्य दान क्यों करता है?

दादाश्री : ऐसा है न, वह खुद दान करके कुछ पाना चाहता है। सुख देकर सुख पाना चाहता है। मोक्ष हेतु दान नहीं करता। आप लोगों को सुख देंगे तो आपको सुख मिलेगा। जो आप देंगे वह मिलेगा। मतलब यह तो नियम है। देने से हमें मिलता है, ले लेने से फिर चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : उपवास करना अच्छा कि कुछ दान करना अच्छा?

दादाश्री : दान करना माने क्या कि खेत में कुछ बोना। खेत में बोकर आना यानी उसका फल मिलेगा। और उपवास करने पर अंदर की जागृति बढ़ेगी। मगर शक्ति के अनुसार उपवास करने को भगवान ने कहा है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, दान बाहर तो लोग बहुत बड़ी मात्रा में करते हैं।

दादाश्री : वे दान करते हैं पर यों अपने सगे-संबंधिओं को कायदे से बाहर नहीं देते हैं। दान करें क्योंकि खुद उसका फल पाना चाहता है। मैं उसका फल पाना चाहता हूँ, वह तो एक तरह का स्वार्थ है। ऐसा दान तो स्वार्थ है। मगर कायदे से बाहर सगे-संबंधिओं को नहीं देते। यह तो मैं ने सभी बिरादरी में देखा है।

सांसारिक बुद्धि रखे स्वार्थ में

पैसे क्या है? पूरन-गलन है। पूरन हुआ मतलब गलन होगी ही। बहीखाते के हिसाब हैं। उसमें लोग बुद्धि का प्रयोग करके दखलअंदाजी कर देते हैं। यह तो सारी शक्तियाँ पूरन-गलन में व्यर्थ गवाँते हैं। पैसा तो बैंक बेलेन्स है, हिसाब है, निश्चित हुआ है। उसमें, जो पैसा कमाने में बुद्धि इस्तेमाल करते हैं, वे अपना ध्यान बिगाड़ते हैं और आने वाला भव बिगाड़ते हैं।

और उपर से ट्रिक (चालाकी) करना सिख गये हैं। ट्रिक माने सामनेवाले की कम अक्ल का फ़ायदा उठाकर अपनी अक्लमंदी के प्रयोग द्वारा सामनेवाले के साथ ठगाई करके झपट लेना। मतलब ट्रिकवाला बड़ा होशियार होता है। दूसरे, चोर भी होशियार होते है। ट्रिकवाले की तो भयंकर अधोगति होती है।

वणिक प्रकृति के लोग तो बुद्धि से ऐसी बाड़ बना लेते हैं कि वे अपनों का ही देखते हैं, पडोसी का नहीं देखते। व्यवहार में वे अच्छे क्यों दिखाई देते हैं? बुद्धि की बाड़ से। उनकी दृष्टि खुद की ओर ही होती है। अपने ही स्वार्थ में लगे रहते हैं। इसलिये स्वार्थ वश वे जबान नहीं खोलते। यदि उसे न्याय करने को कहा जाये तो उसमें वह सामनेवाले को सुख होगा कि दु:ख होगा, यह देखने जाये। मतलब न्याय ऐसा करे कि सामनेवाले को बुरा न लगे। उसे बुरा न लगे इसलिये वह झूठ बोले, गलत न्याय करे। पर भगवान तो भीतर ही बैठे हैं, वे देखें कि इसने तो दोनों ओर पर्दा रखा है। अरे! स्पष्ट रूप से कह दें, कड़वा नहीं लगे इस तरह सच बता दें। पर यह तो पर्दा रखकर झूठा न्याय करे। मतलब भारी जोखिमदारी मोल ली। सामनेवाला गलत हो उसे सही ठहराना यह तो बहुत बड़ी जोखिमदारी सिर पर ली कहलाये। जैसा है वैसा ही बता देना चाहिए।

यह सब कैसे खड़ा हुआ है? तब कहे कि सामनेवाले को दिखाई नहीं देता वहाँ तक स्वार्थ में रहते हैं इसलिये। संसार में शांति रहे इसलिये बुरा संग्रह किया, मतलब मोक्ष में जाते समय कष्ट देते-देते यह माल जायेगा। यह माल बहुत परेशान करेगा। आसानी से मोक्ष में नहीं जाने देगा।

जान-बूझकर ठगे जाने में परमार्थ

जान-बूझकर ठगे जाने जैसा कोई परमार्थ नहीं है और मैं सारी जिंदगी जान-बूझकर ठगाता आया हूँ। लोग पूछते हैं कि, 'इसका फल क्या?' तब मैं कहता हूँ कि, 'जान-बूझकर ठगे जाने पर कौन-सा पद मिलता है? कि दिल्ली में जो सुप्रीम कोर्ट है न, उसके जज को भी झिड़काने जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है।' यानी क्या? जज की भी भूल चूक निकाल सके ऐसा हाई क्लास, पावरफुल दिमाग हो जाता है। कानून की लपेट में ले ले ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है। जो जान-बूझकर ठगा जाता है, जो किसी को ठगता नहीं है, उसका दिमाग उतना हाई लेवल पर जाता है। पर ऐसे जान-बूझकर कौन ठगा जाये? ऐसा कौन पुण्यवंत होता है? और यह समझदारी अडॉप्ट् (स्वीकृत) कैसे होगी? यह समझदारी पाये कहाँ से? ठगने की समझदारी

देंगे, पर ठगे जाने की समझदारी कौन देगा?

मान-अपेक्षा का स्वार्थ कैसा ?

(दादाजी कहते है) हम मन में ऐसा ही समझे कि, 'मैं ही हूँ। इस दुनिया में मेरे सिवा और कोई है ही नहीं।' देखिये, अपने आप को क्या समझ बैठे थे? मिल्कियत में दस बीघा जमीन और एक घर, इसके अलावा और कुछ नहीं, और मानों चरोतर प्रदेश का राजा हो ऐसा मन में रौब रखे। क्योंकि आसपास के छह गाँव वालों ने हमें सिर पे चढ़ाया था कि पैठणिया दुल्हा, माँगे उतनी पैठण (कन्या पक्ष की ओर से दी जाने वाली नगद राशि) मिले तब तो यह दुल्हा ब्याहने जाये। दिमाग पर इसका घमंड सवार हो गया था। और पूर्वभव का कुछ लाया था इसलिये ऐसा गरूर लिये फिरता था।

उसमें भी मेरे बड़े भाई तो जबरदस्त गुरूरवाले थे। मेरे बड़े भाई को मैं 'मानी' कहा करता था पर वे मुझे 'मानी' बताते थे। एक दिन मुझ से क्या कहते हैं? "तेरे जैसा 'मानी' मैं न और नहीं देखा।" मैं ने कहा, 'कहाँ पर आपने मेरा मान देख लिया?' तब कहें, 'हर एक बात में तेरा मान होता है।'

फिर मैं ने अपनी खोज की तो सभी बाबतों में मेरा मान दिखाई दिया और वही मुझे परेशान करता था। मान के खातिर क्या किया था? जो कोई मुझे मिलता 'अंबालालभाई, अंबालालभाई' कहकर पुकारता था। 'अंबालाल' तो कोई कहता ही नहीं था। छह अक्षर ही बोलते थे और मेरी आदत बन गई थी, उसका 'हैबिच्युएटेड' हो गया था! अब मान बहुत भारी था, इसलिये रक्षा तो उसकी होगी ही! फिर कभी कोई 'अंबालालभाई' के छह अक्षर बोल नहीं पाता और जल्दी में 'अंबालाल' बोल देता, तो उसमें क्या कोई कसूर था उसका? छह अक्षर एक साथ जल्दी में कैसे बोल पाये कोई?

प्रश्नकर्ता : पर आप ऐसी आशा करते थे न?

दादाश्री : अरे! मैं फिर तोल लगाता कि, "इसने मुझे 'अंबालाल' कहा? क्या समझता है? क्या वह 'अंबालालभाई' नहीं बोल सकता?" गाँव में दस-बारह बीघा जमीन, रौब जमाने लायक और दूसरा कुछ नहीं फिर भी क्या समझ बैठे थे मन में? हम छह गाँववाले अमीन (पटेल ज्ञातिवाले), दहेजवाले!

अब किसी ने 'अंबालालभाई' नहीं कहा हो तो मुझे रात नींद नहीं आती थी, अकुलाहट होती थी। लीजिये, उसमें क्या मिलनेवाला था? उसमें मुँह थोड़ा मीठा होनेवाला था? कैसा स्वार्थ होता है मनुष्य को? ऐसा स्वार्थ जिसमें कोई स्वाद न हो! फिर भी मान बैठा था! वह भी लोकसंज्ञा से। लोगों ने उसमें बड़ा बनाया और लोगों ने बड़ा माना भी सही! अरे! इन लोगों के माने हुए का क्या करना है, आखिर?

ये गायें-भैंसे हमें ताकती रहें सब और फिर कान हिलाती हों तो क्या हम ऐसा समझें कि हमारा सम्मान करती हैं? ऐसा है यह सब! हम अपने मन में ऐसा समझें कि लोग सभी मान से देख रहे हैं! वे बेचारे सभी अपने-अपने दु:ख में, अपनी-अपनी चिंता में हैं। वे क्या आपकी राह तकते हैं?

स्वार्थ बुद्धि वहाँ अंतर अशांति

मनुष्य अंतर् शांति हेतु बाहर दौडधूप करते हैं, पर ऐसी दौड़धूप से थोड़े शांति मिलती है? अंतर् शांति होने पर ही बाहर शांति मिलेगी। मतलब पहले अंतर् में सुख है ऐसा श्रद्धा में आयेगा तभी अंतर् शांति मिलेगी।

भगवान ने क्या कहा था कि अंतर् सुख और बाह्य सुख का काँटा देखा करना। अंतर् सुख घटे और बाह्य सुख बढ़े तो समझना कि मौत आई। काँटा थोड़ा-बहुत ऊँचा-नीचा रहा तो चला लेते पर यह तो अंतर् सुख की डंडी पूरी की पूरी ऊपर जाती रही हो तो क्या दशा होगी, तेरी? यह बाहरी सुखों की वृद्धि

हो गई, चालीस लाख का फ्लेट हो, खाना-पीना भरपूर हो, फ्रूट के टोकरे भरे हों तब साहब को 'ब्लड प्रेशर' और 'हार्ट अटैक' आया हो और बाई साहब को 'डायबिटीज़' हो गई हो! यानी डॉक्टर ने दोनों के मुँह पर छींका बाँध दिया हो!!! फिर यह सब खायेगा कौन? तो बोले कि, घर के वे चूहे - नौकर और रसोइया, खा-पीकर लाल टमाटर जैसे बने हुए होते हैं। 'फ्लेट' में प्रवेश करने पर ऐसा लगे मानों स्मशान में प्रवेश किया हो! सेठजी के साथ बात करें तब वे निरे अहंकार से बात करें! सेठजी महँगे दाम वाली चाय पिलाये, पर जहाँ तक भाव रूप द्रव्य नहीं डाला हो, वहाँ तक सोलह आनी टच का सोना रहा, तब भी निकम्मा है। सेठजी का मुँह देखें तो मानों सेठजी हँसना ही भूल गये हों, ऐसा लगे। बाह्य सुख का यह कैसा उपहार?(!)

अंतर् शांति तृप्ति दिलाये और बाह्य शांति से लोभ की वृद्धि होती रहे। जहाँ स्वार्थ बुद्धि है, वहाँ अंतर् शांति नहीं रहती।

सुख देने में स्वार्थ नहीं होना चाहिए

संसार में यदि सुख चाहिए तो प्रत्येक जीव को सुख दीजिये और दुःख चाहते हैं तो दुःख दीजिए। जो देंगे वह आप पायेंगे।

प्रश्नकर्ता : बिलकुल, एकदम सरल और सही बात है।

दादाश्री : इतने ही शब्द, यदि इतनी ही समझदारी से काम करे न, तो बहुत हो गया। फिर शास्त्रों को पढ़ने की ज़रूरत नहीं हैं।

सब को सुख दीजिये। हाँ, यदि पैसों की मदद नहीं कर सकें तो किसी के लिये फेरा लगाकर, सलाह-मसलहत देकर भी सुख पहुँचाइये। आपकी विकसित बुद्धि लोगों को मसलहत देने में काम आयेगी तो लोगों का काम बन जायेगा। बुद्धि यदि लोगों को मसलहत देने के काम आई तो सामनेवालों का काम हो जायेगा।

पर लोगों ने तो बुद्धि का दुरुपयोग किया। बुद्धि से लोगों ने कम बुद्धिवालों पर गोलियाँ चलायी। भगवान ने उसे आर्तध्यान नहीं कहा, अपध्यान कहा है। अधिक बुद्धिवालों ने कम बुद्धिवालों का फ़ायदा उठाया मतलब गोलियाँ चलायीं उन पर! बुद्धि से मारना यह तो था ही नहीं किसी काल में। इस काल में ही यह नई बला पैदा हुई है!

एक सेकिन्ड के लिये यदि (आत्मा) ज्ञाता-द्रष्टा रहा तो हो गया परमात्मा! सब से रहित होकर खड़ा रहे। वह पड़ोसी कहलाये, सब से रहित! वर्ना वहाँ तक देहाध्यास कहलाये। 'भगवती सूत्र' में सुंदर लिखा है, साक्षीभाव रखो। पर साक्षीभाव किसी विरले को ही, लाखों में दो-पाँच को ही रहे, यदि प्रयत्न करे तो! बाकी (संसारी मोह का) नशा उतरता ही नहीं न? यह मोह उतरता नहीं और साक्षी नहीं रहने देता। साक्षी रहे तो बुरा काम नहीं करे। साक्षीभाव जिसे रहता हो उसे अपनी भूलों का पता चल जाये और अपने सारे दोष कह सुनायें। औरों को तो (अपने दोष) याद ही नहीं आते न?

साक्षीभाव किसे कहते है? अहंकार सहित ज्ञाता-द्रष्टा रहना उसे साक्षीभाव कहा और यह तो अहंकार रहित ज्ञाता-द्रष्टा भाव। साक्षीभाव वह भ्राँति कहलाये और ज्ञाता-द्रष्टा यथार्थ ज्ञान कहलाये। यानी यह (ज्ञान) हरकत कर्ता नहीं है।

ऐसा स्वार्थी, विपरीत बुद्धि से

स्वार्थी तो बड़े पक्के होते हैं।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि जो है वह स्वार्थ दिखाती है?

दादाश्री : स्वार्थ दिखाये वह बुद्धि नहीं कहलाये, पर वह विपरीत बुद्धि कहलाये।

प्रश्नकर्ता : भेद भी बुद्धि ही करवाती है न?

दादाश्री : हाँ, बुद्धि ही करवाये, और वह

विपरीत बुद्धि ही। बुद्धि यह सारा काम करती है।

प्रश्नकर्ता : मेरी तो बुद्धि काम ही नहीं करती न?

दादाश्री : बहुत अच्छा, काम नहीं करती हो तो अच्छा है। हमारी भी बुद्धि कहाँ काम करती है? मेरी बुद्धि ज़रा-सा भी काम नहीं करती है।

बुद्धि से 'मैं' और 'तू' के भेद हो गये। ज्ञान से सब एक ही हैं।

प्रश्नकर्ता : मगर उसकी प्रतीति होनी चाहिए न?

दादाश्री : ऐसी प्रतीति हो जाये तभी काम होता है कि यह बुद्धि से अलग हुए हैं और ज्ञान से एक ही हो गये। ज्ञान प्रकाश एक ही है, एक ही तरह का। बुद्धि से भेद हुए हैं। और 'मैं हूँ' वहाँ तक बुद्धि है। अहंकार है वहाँ तक बुद्धि खड़ी रहती है और बुद्धि है वहाँ तक अहंकार खड़ा रहता है। दोनों का साझे का व्यापार है।

सांसारिक स्वार्थ वहाँ मोक्ष के अंतराय

'मुझे क्या' ऐसा हुआ मतलब वह सबसे अलग हुआ यानी पूर्ण रूप से स्वार्थी हुआ, सांसारिक स्वार्थी और 'मुझे क्या' बोला कि हमेशा के लिये उसका मोक्ष अटका।

सांसारिक स्वार्थ अपेक्षा रखवाये

फिर लोग हमें कहें भी सही कि, व्यवहार में नहीं रहते हो। तब कहे, यह तो मुझे मालूम है इसमें नया क्या है? वह तो अपने-अपने स्वार्थ की बातें हैं सारीं। व्यवहार में कैसे रहना? जो हमारी इस जनम की फिल्म है, उससे अलग नई तरह का खोजना क्या? वह तो बुद्धि ऐसा दिखलाये और पहले की बुरी आदतें हैं। इसलिये हम कह दें कि कोई भूल-चूक हो तो सम्हाल लेना। हाँ, आप बड़े दिलवाले हैं, थाम लेना। इतना कह दिया कि फिर चलता रहे।

सिवाय आत्मा का, गया परार्थ में

प्रश्नकर्ता : खरा व्यवहार तो ज्ञानी से जानने को मिले न?

दादाश्री : हाँ, व्यवहार माने क्या? सामनेवाले को बाधक नहीं हो, उसे आनंद रहे और हमें भी आनंद रहे, उसका नाम व्यवहार; निश्चय नहीं। बच्चे यदि निश्चय के होते तो उनके गालियाँ देने पर भी हम उनके साथ ही रहते। उनके मर जाने पर हमें मर जाना चाहिए। यह तो बाप के जाने के बाद (स्मशान से लोटने) रास्ते में ही चाय-पानी करें। हम उसकी आलोचना नहीं करते हैं। वह भी तो बाप होनेवाला है, उसमें नया कुछ नहीं है। मगर हमें समझ लेना चाहिए कि मुझे दादाजी से ज्ञान मिला है तो अब मुझे कहाँ पर खड़ा रहना चाहिए। वर्ना लोगों का किया सब अफल जाता है और परार्थ खर्च होता है। वह स्वार्थ में नहीं होता और न ही परमार्थ में। स्वार्थ माने आत्मा के लिये करें वह स्वार्थ। और परमार्थ माने क्या? कि लोकोपकार। यह तो परार्थ जाता है। अपने नहीं हैं उसे अपने मानकर दूध पिलाते हैं! वह गया परार्थ में! परार्थ माने क्या समझे? ये लोग जो स्वार्थ करते हैं वह परमार्थ नहीं है, स्वार्थ भी नहीं है, वह तो परार्थ है।

प्रश्नकर्ता : इसे ज़रा विस्तार से समझाइये न?

दादाश्री : परायों के लिये गैया दुहना और कुत्ते को पिला देना, उसमें तेरा क्या? लोगों का नुकसान कर-करके, इधर-उधर से, उल्टा-सीधा करके पाँच करोड़ जमा किये और लड़के को देकर, निकले अर्थी में सवार होकर! सारी जिम्मेदारी खुद की और लड़के गुलछर्रे उडायेंगे अब! उल्टा-सीधा किया वह जिम्मेदारी। वहाँ हिसाब देना होगा इसका!

मुख्य धर्म, आत्मकल्याण साधें

प्रश्नकर्ता : हम यहाँ सत्संग, भजन में हमारा जी पिरोयें और बार-बार यहाँ आयें तो घरवाले ऐसा समझते हैं कि मैं अपना फर्ज चूक जाती है। और खुद

को ऐसा लगता है कि मैं यदि भगवान के प्रति अधिक प्रीति रखूँगी और इस प्रकार सत्संग में जाती रहूँगी तो बच्चे कहीं के नहीं रहेंगे, तो क्या करना चाहिए? घर बैठकर भजन करना चाहिए कि यहाँ आपके पास आना चाहिए और अधिक समय यहाँ बैठना चाहिए? क्या करना चाहिए?

दादाश्री : यह मन, बुद्धि, अहंकार क्या करते हैं उसे देखिये। मतलब जो करते हैं वह करने देना। यहाँ आते हैं, उसे आने देना और वापस घर जाते रहें, उसे जाने देना। अपने बच्चों के लिये मत बैठे रहना कि इसके लिये भी मत बैठे रहना।

प्रश्नकर्ता : सही रास्ता कौन-सा? हम घर पर बच्चों को संभालें कि हमारा अपना कल्याण करने सत्संग में आयें?

दादाश्री : बच्चे तो संभले हुए ही हैं, बच्चों को आप क्या संभालेंगी? अपना कल्याण करना यही मुख्य धर्म। बाकी बच्चे तो संभल ही रहे हैं न? बच्चों को क्या आप बड़े करती हैं? बग़ीचे में गुलाब के पौधे लगाये होते हैं, वे रात में ऊँचे उठेंगे की नहीं उठेंगे? वह तो हमारी समझ में है कि गुलाब मेरा है पर गुलाब तो ऐसा ही समझे न कि मैं खुद ही हूँ, और किसी का नहीं हूँ। सब अपने-अपने स्वार्थ से आगे हैं। इस समय तो हम पगला अहंकार करते हैं, पागलपन करते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि हम गुलाब को पानी नहीं देते तो गुलाब तो मुरझा जाये?

दादाश्री : पानी नहीं दें ऐसा हो ही नहीं सकता, नहीं देते तो काट खाये।

सांसारिक कर्तव्य : धर्म कार्य

प्रश्नकर्ता : सांसारिक कर्तव्य और धर्मकार्य के बिच समन्वय कैसे करें?

दादाश्री : सांसारिक कर्तव्य तो अनिवार्य ही है। माँ-बाप समझें कि बच्चे के प्रति हमारे कर्तव्य निभाते हैं, वे अनिवार्य हैं। बच्चे को यह समझना चाहिए कि माँ-बाप ने मुझ पर उपकार किया है इसलिये मुझे उनके प्रति भाव रखना चाहिए. ऐसी मान्यता होनी चाहिए। अन्यथा फिर वह मेकैनिकल हो जाये। अनिवार्य हुआ न इसलिये, माँ-बाप के प्रति सेवा का भाव उड़ जायेगा न?

अब सांसारिक कर्तव्य निभाते समय धर्मकार्य के साथ समन्वय कैसे करना? तब कहते हैं कि, बेटा उलटा बोल रहा हो, तब भी हम अपना धर्म चूके बिना अपना कर्तव्य निभायें। आपका धर्म क्या? कि बेटे को पाल-पोसकर बड़ा करना, उसे सन्मार्ग पर चढ़ाना। अब वह उलटा बोलता हो और आप भी उलटा बोलें तो क्या होगा? वह बिगड़ जायेगा। इसलिये आप उसे प्रेम से, फिर से समझाना कि बैठ भैया, यह ऐसा है, वैसा है। मतलब प्रत्येक कर्म के साथ धर्म जुड़ा होना चाहिए। यदि धर्म को प्रवेश नहीं करने देंगे तो उस वेक्युम में अधर्म घुस जायेगा। कमरा खाली नहीं रह सकता। अभी यहाँ हमने कमरे खाली रखे होंगे तो ताले खोलकर भी लोग घुस जाते हैं कि नहीं घुस जाते?

प्रश्नकर्ता : सही है।

दादाश्री : तो वहाँ पर खाली मत छोड़ना, वहाँ धर्म घुसेडे ही रखना। वर्ना अधर्म घुस जायेगा। मतलब प्रत्येक कर्तव्य धर्म समेत होना चाहिए। मन में आया ऐसा कर्तव्य नहीं, मन में आये उसमें फिर धर्म मिलाकर अच्छे तौर पर कर्तव्य निभाना चाहिए। आया समझ में, समन्वय कैसे करना?

प्रश्नकर्ता : मतलब कर्तव्य और धर्म, दोनोंको एक ही बनाकर वर्तन करना?

दादाश्री : नहीं। कर्तव्य माने अनिवार्य है। धर्म माने नैचुरल लॉ है। धर्म के दो प्रकार, एक आत्मधर्म और दूसरा देहाध्यास रूपी धर्म, जिसमें सुखी हो सकें।

मतलब अशुद्ध और अशुभ दोनों अधर्म हैं और शुभ वह धर्म है। किसी का भला करना, किसी को सुख पहुँचाना, किसी की मदद करना, किसी को दान करना यह सब धर्म कहलाता है। पर यह देहाध्यास रूपी धर्म कहलाये, जो मुक्तिधर्म नहीं है। मुक्तिधर्म तो आत्मधर्म, स्वधर्म में आने पर ही। तो वह स्वधर्म पालन हेतु मैं आपको कल बुलाता हूँ। आपने वह (देहाध्यास रूपी) धर्म तो बहुत दिनों किया, अनंत अवतारों किया, उसका क्या फल आया? पुण्य संचय हुआ और पुण्यफल भोगते समय पाप बंधे। समन्वय आपकी समझ में आया, थोड़ा-बहुत?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी।

दादाश्री : घर की स्त्रियों का सच्चा धर्म क्या है? कि पास-पड़ोस की सभी स्त्रियाँ, सारे पुरुष ऐसा कहें कि इस औरत के क्या कहने! ऐसे कर्तव्य निभाये कि पास-पड़ोस के लोग खुश हो जायें। यानी स्त्री का सच्चा धर्म यही है कि बच्चों को बड़ा करना, बच्चों में संस्कार सींचन करना, पति में यदि संस्कार कम रहे तो उसे संस्कार देना। अपना सब सुधारना, उसका नाम धर्म। सुधारना नहीं चाहिए क्या?

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

प्रश्नकर्ता : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जीवन के यह चार पुरुषार्थ ज़रा समझाइयें?

दादाश्री : अर्थ यानी हमारे लोग सांसारिक स्वार्थ कहते हैं वह। वहाँ से (सांसारिक स्वार्थ से) लेकर अंतत: परमार्थ तक का अर्थ वह अर्थ है। आखिर परमात्मा तक अर्थ रहता है।

परमार्थ माने क्या? आत्मा संबंधी ही जो स्वार्थ है, और कोई स्वार्थ ही नहीं है, आत्मा के अलावा संसार संबंधी कोई स्वार्थ ही नहीं है वह परमार्थ कहलाये। और आत्मा संबंधी स्वार्थी तो एक 'ज्ञानी पुरुष' ही होते हैं। अर्थ, फिर जो स्वार्थ में ले जाते हैं उस समय सकाम में परिणमित होता है और अर्थ जब परमार्थ में जाता है तब निष्काम में परिणमित होता है। वही का वही काम मोक्ष में ले जाये और वही काम संसार में भटकाता है।

धर्म के संदर्भ में भी ऐसा ही, वही धर्म संसार में भटकाता है और वही का वही धर्म मोक्ष में ले जाता है।

प्रश्नकर्ता : धर्म की व्याख्या क्या है?

दादाश्री : इस संसार में भटकाता है वह शुभ धर्म है और मोक्ष में ले जाता है वह शुद्ध धर्म है।

धर्म नाम कैसे पड़ा? तब कहे, अधर्म था इसलिये धर्म हुआ। मतलब यह धर्माधर्म है। संसार के धार्मिक पुरुष क्या करें? अधर्म के विचार आने पर उसे सारा दिन धक्के मारते रहें। अधर्म को धक्के मारना उसे धर्म कहा।

प्रश्नकर्ता : धर्म का पालन करने पर अधर्म 'ऑटोमैटिकली' निकल जाये न?

दादाश्री : धर्म के दो प्रकार हैं। एक स्वाभाविक धर्म और दूसरा विशेष धर्म। जब शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है तब स्वाभाविक धर्म में आते हैं। स्वाभाविक धर्म ही सच्चा धर्म है। उस धर्म में 'चुनने का' कुछ है ही नहीं। विशेष धर्म में सब चुनने का है।

लौकिक धर्म किसे कहते है? दान करना, लोगों पर उपकार करना, 'ऑब्लाइजिंग नेचर' रखना, लोगों की सेवा करना, इन सभी को धर्म कहा। उनसे पुण्य बँधता है। गालियाँ सुनाने से, मारपीट करने से और लूट करने से पाप बँधता है। जहाँ पर पाप और पुण्य है वहाँ सच्चा धर्म नहीं है। पुण्य-पाप से रहित धर्म सच्चा धर्म है। जहाँ पुण्य-पाप को हेय समझा जाता है और उपादेय निज स्वरूप को समझा जाता है, वह 'रियल' धर्म है। मतलब 'रियल' और 'रिलेटिव' दोनों धर्म अलग-अलग हैं।

अर्थ, सांसारिक स्वार्थ में परिणमित हो उसका नाम अधर्म और आत्मिक स्वार्थ में परिणमित हो उसका नाम धर्म कहलाये। ऐसा ही सकाम और निष्काम संबंध में है।

प्रश्नकर्ता : बिना धर्म के कोई जीव रह सकता है क्या?

दादाश्री : कोई जीव धर्म से बाहर होता ही नहीं, धर्म में होता है या अधर्म में होता है, इसके सिवा नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : कोई-कोई ईश्वर को नहीं मानते हैं न?

दादाश्री : इस जगत् में ईश्वर में नहीं माननेवालों को हमें नास्तिक नहीं कहना चाहिए। उनको नास्तिक कहना भयंकर गुनाह है। क्या कारण है उसका? जिन्हें 'मैं हूँ' ऐसा अपने अस्तित्व का भान है वे सभी आस्तिक कहलायें और धर्म सारे अलग-अलग तरह के होते हैं। कोई नीति का प्रमाण माने, कोई सत्य का प्रमाण माने, कोई मनुष्यों को बचाने को प्रमाण माने, वह भी धर्म का पायदान ही है। मंदिर बनवाने का नाम ही धर्म है, ऐसा नहीं है। जो पूर्ण रूप से नीतिपरायण है वह यदि कभी भी मंदिर में दर्शन करने नहीं जाता तो भी चलेगा। उसे और किसी की ज़रूरत नहीं है। प्रामाणिकता धर्म का सब से बड़ा साधन है। प्रामाणिकता और नीति से बढ़कर धर्म में और कोई बड़ा साधन ही नहीं है। यह तो नीति, प्रामाणिकता जैसा कुछ नहीं रहता, इसलिये फिर खुद धर्म में जाकर, मंदिर में जाकर कहे, 'हे प्रभु! मैं कपड़ा खींचकर बेचता हूँ पर मुझे क्षमा करना,'' ये व्यापारी कपड़ा बेचते समय खींचते हैं, वे ऐसा क्यों करते हैं? मैं उनसे पूछता हूँ कि, 'यह भगवान की भक्ति करते हो और ऊपर से कपड़ा खींचकर क्यों नापते हो?' तब वह कहे कि, 'सभी खींचते हैं इसलिये मैं भी खींचता हूँ।' मैं ने कहा, 'सभी तो कुएँ में पड़ेंगे तो आप भी पड़ेंगे? आप क्यों खींचते हैं?' तब व्यापारी कहे, 'चालीस मीटर बेचें उसमें खींचकर बेचें तो पाव मीटर की बचत होती है।' अरे! यह खींचने का व्यायाम किसलिये करता है? यह तो तू बार-बार रौद्रध्यान करता है, तेरी क्या गत होगी? मैं ने तुझे महावीर की सभा में बैठा देखा था। वे लोग ही आज यहाँ पर कपड़ा खींच-खींच करते हैं फिर भी मोक्ष में जाने की बारी नहीं आती है। यह तो चटनी की ताक में बैठे रहे हैं, ये लोग कुछ पूरे थाल की ताक में नहीं बैठे रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : सत्य, अहिंसा, प्रामाणिकता, ये जो दिव्य गुण हैं, उनमें से एकाध गुण की उपासना करे, तो ऐसा है कि, शेष सारे 'आटोमैटिकली' उसमें आ जाये?

दादाश्री : एक पकड़ ले तो सारे आ जायें। एक को पकड़कर बैठ गया यानी सब आ गये समझिये।

यथार्थ लौकिक धर्म

जगत् के लोगों को हम बहुत ही सरल लौकिक मार्ग प्रदान करेंगे। उसमें ये क्रियाकांड के तुफान नहीं होंगे। कोई ग्रामवासी हमारे पास आया और उसे कहें कि, 'सत्य बोलना, चोरी मत करना, दया रखना, झूठ नहीं करना' तो सब सुनकर उसे एक ओर रख देगा। पर हम उसे एक वाक्य कहेंगे कि, 'भैया, तू उलझनें मत खड़ी करना।' फिर वह पूछे कि, 'उलझनें माने क्या?' तब हम उसे फिर से समझायें कि, 'यह तेरे सामनेवाले खेत में नेनुवे देखे और तेरे मन को भाये और तू उठा लाया, तो वह बिना पूछे किसी का उठा लाना, वह उलझन कहलाये। तेरी समझ में आई बात?' तो वह तुरंत कहेगा, 'हाँ जी, समझ लिया उलझन को। अब ऐसी उलझन खड़ी नहीं करूँगा, ऐसी तो मैं न बहुत उलझनें खड़ी की हैं।'

फिर वह उसकी बीवी को लेकर आयेगा तो उसे भी उलझन की बात समझाऊँगा। उसकी बीवी

कहे कि, 'दादाजी, 'वे' मेरे साथ बहुत उलझनें खड़ी करते हैं।' तो फिर उसे भी मैं उलझन के बारे में समझा दूँ। इसके बाद जब-जब उलझन पैदा होने की नौबत आये तब-तब दादाजी अवश्य याद आ जायें और उलझन पैदा नहीं होती। 'हम' तो क्या कहें कि उलझनें खड़ी मत करना और यदि उलझनें खड़ी हो जाये तो उसका प्रतिक्रमण करना, यह उलझन शब्द तुरंत समझ में आ जाये। लोग तो 'सत्य, दया, चोरी मत करो' यह सुन-सुन कर थक गये हैं।

यह लौकिक धर्म तो हम चुटकी में समझा देंगे पर अलौकिक धर्म में थोड़ा टाइम लगता है।

निःस्वार्थ रहनुमा से सच्चा मार्ग मिले

प्रश्नकर्ता : मेरा हमेशा व्याख्यान में जाने का नियम है।

दादाश्री : रोजाना नहायें और शरीर का मैल नहीं निकले तो नहाना किस काम का? यह तो रोजाना व्याख्यान में जाये, पर मन का, वाणी का, बुद्धि का मैल नहीं निकलता वह किस काम का? हमारी दरिद्रता नहीं मिटती तो किस काम का? व्याख्यान करनेवाला चाहे इतना जानता हो पर हमारा दुःख यदि कम नहीं होता हो व्यर्थ ही है। हमारे दुःख जायें ऐसे दर्शन हुए तो सार्थक, वर्ना दर्शन करना व्यर्थ गया। सामनेवाले के पास पचास बंगले हो पर उसके दर्शन से हमें झोंपड़ा तक नहीं मिलता तो ऐसे दर्शन बेकार ही हैं। जिस महाराज के दर्शन करे और दुःख नहीं जाता तो वे खुद कितने दुःखी होंगे?

तेली का बैल तो आपने देखा है न? वह अँधौटी पहनकर मन में माने कि, 'मैं बहुत दूर तक चला हूँ।' और अँधौटी खोलने पर वहीं का वहीं खड़ा हो। ऐसे यह जगत् तेली के बैल की तरह चलता रहता है और परिश्रम व्यर्थ जाता है। जहाँ तक यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं होता वहाँ तक सारी मेहनत व्यर्थ जाती है। स्टेशन का रास्ता यदि मुझे मालूम नहीं हो तो मैं भटक जाऊँगा और चार गुना रास्ता कट जाये तो भी मंज़िल तक नहीं पहुँच पाऊँ। यदि स्टेशन की राह पर भटकना होता है तो इस अध्यात्म में सही रास्ता खोजने में कितनी भूलें होना संभव है? इसलिये खोज तो करनी चाहिए न? यदि खुद को संतोष नहीं होता हो तो वह रास्ता छोड़कर दूसरा रास्ता खोज निकालना चाहिए। मोक्ष की एक ही पगडंडी है और वह भी भूल भूलैयावाली। अनेकों अन्य मार्ग हैं पर वे सारे ऑर्नामेन्टल (सजावटी) हैं। कोई सच्चा रहनुमा हो उसे ही मोक्ष का मार्ग पूछा जाये और वह भी निःस्वार्थ रहनुमा होना चाहिए।

बिना ज्ञान नहीं हटे संसारी स्वार्थ

प्रश्नकर्ता : जीवन का एक भी पल निःस्वार्थ रूप से कैसे निकल सके?

दादाश्री : ज्ञान बिना संभव नहीं है। बिना ज्ञान कुछ भी संभव नहीं है। आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। वर्ना निःस्वार्थ रूप से एक पल भी नहीं निकल सकता है, जहाँ तक आत्मज्ञान हुआ नहीं हो, जहाँ तक 'स्व' और 'पर' का भान नहीं हुआ हो, वहाँ तक। यह तो 'पर' है और 'पर' में अपनापन है, वहाँ तक एक सेकिन्ड भी बिना स्वार्थ के नहीं गुज़रता। जब ज्ञान प्रदान करें तब परमेनन्ट रूप से, सदा के लिये जाये। मतलब इन में ऐसे दस हज़ार लोग हैं जिनके, बहुतेरों को परमेनन्ट स्वार्थ ही नहीं है। एक सेकिन्ड के लिये भी स्वार्थ नहीं है, वर्ना लोगों को तो किसी को, साधु तक को एक सेकिन्ड के लिये भी स्वार्थ नहीं हटता। साधु-आचार्यो तक को नहीं हटता न? आत्मज्ञान नहीं होता वहाँ तक व्यर्थ है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा हेतु ज्ञान, वह भी स्वार्थ नहीं है?

दादाश्री : नहीं। वह स्वार्थ तो सभी को है। यह स्वार्थ जो कहलाता है न, वह तो भ्रांति का स्वार्थ है। मतलब यह हक़ीकत में स्वार्थ नहीं है। यह तो

संसारी स्वार्थ है। आत्मा होने पर संसारी स्वार्थ जाये। वहाँ तक संसारी स्वार्थ हटता नहीं। हक़ीकत में यह स्वार्थ ही नहीं है। स्वार्थ तो आत्मा होने के बाद खरा स्वार्थ होता है। 'स्व' का अर्थ, आत्मा 'स्व' है और यह (देह) पर है, यह नाम पर है, भ्रांति है, जो यहाँ जमा किया न, वह अर्थी उठने पर सब तितर-बितर हो जानेवाला है और उलटे निकम्मे, कर्मो को बाँधकर चलते बनते हैं। भारी कर्मो को बाँधे, चिकने कर्मो को बाँधकर दु:ख भोगते हैं। अनंत अवतार से जीव यही करता आया है। धर्म करे मतलब अधर्म को धक्के मारा करते हां। धर्म से सोने की बेड़ी मिलती है और अधर्म से लोहे की बेड़ी मिलती है। क्या करे मगर? दोनों बंधन हैं, वहाँ तक स्वार्थ एक सेकिन्ड के लिये भी नहीं हटता। प्रश्न बहुत ऊँचा है इनका। यह ऐसा-वैसा प्रश्न नहीं है। यहाँ आपके जितने भी पाँच-पचास प्रश्न हो, उन सबके उत्तर हम देंगे। सभी अपने शास्त्रों के खुलासे यहाँ आकर जाइये।

प्रश्नकर्ता : मेरे पास ऐसा कोई ज्ञान नहीं है और न ही मैं ने धर्म की कोई शिक्षा प्राप्त की है। यह तो लोगों ने बिठा दिया है, बाकी मेरी कोई हैसियत ही नहीं है।

दादाश्री : हाँ, मगर ऐसा नहीं। यह आपका प्रश्न कोई ऐसा-वैसा नहीं है, एक मिनट भी स्वार्थ हटता नहीं है, हाँ, एक पल के लिये भी नहीं।

नि:स्वार्थ हो ऐसे गुरु करना

किंचित्मात्र स्वार्थ नहीं हो तो उसे तू गुरु करना। गुरु किसका नाम कहलाये? कुछ करने को नहीं कहे, उसका नाम गुरु। यह तो राह चलते गुरु बन बैठे हैं। ऊपर से कहें, 'पंगुम् लंघयते गिरिम्।' अरे! ऐसा बोलते हो और हम से कहते हो कि 'तू चल'। आप ही कहते हैं कि 'मुझे अपने कंधे पर बिठा ले।' 'अरे! मैं पंगु और आप मेरे कंधे पर सवार होना चाहते हैं?' क्या यह विरोधाभास नहीं कहलाये? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : इसके माने यह कि शिष्य को कोई मेहनत नहीं करनी, सारी मेहनत गुरु ही करे?

दादाश्री : हाँ, गुरु को ही करनी चाहिए। यदि आपको करनी पड़े तो आपको गुरु से पूछना चाहिए कि, ''साहब, तब आपको क्या करना है, यह बताइये। यदि आपको कुछ करना नहीं है और केवल हुक्म ही चलाना है तो मैं अपने घर जाकर अपनी बीवी का हुक्म उठाऊँगा। बीवी भी पुस्तक देखकर बतायेगी। आप भी यदि पुस्तक देखकर, शास्त्र देखकर बताते हैं, तो वह भी पुस्तक देखकर बतायेगी। 'ऐसा करो' कहने से नहीं चलेगा, आप भी कुछ हाथ बटाइये। मुझ से जो नहीं हो सके वह आप कीजिये और आप से जो नहीं होता वह हम करेंगे। ऐसा बँटवारा कर लीजिये।'' तब वे गुरु क्या कहें, 'हम क्यों करें?' तब हम कहें, 'तब तो आपको पास हमारा शुक्रवार से शनिवार होनेवाला नहीं है।' ऐसा सुना देना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : पर सामनेवाला व्यक्ति सही तरीके से नहीं रहा तो क्या करना ?

दादाश्री : सामनेवाले व्यक्ति को देखना आवश्यक नहीं है। गुरु अच्छे होने चाहिए। व्यक्ति तो है ही ऐसा, समर्थ नहीं है बेचारा। वह तो ऐसा ही कहता है न कि, 'साहब, मैं समर्थ नहीं हूँ इसलिये ही आपके पास आया हूँ और मुझे करने को कहते हैं?' तब वे कहें, 'नहीं, तुझे ही करना होगा।' तो वह गुरु ही नहीं होगा। यदि मुझे करना पड़े तो आपकी शरण में क्यों आऊँ? आपके जैसे समर्थ क्यों खोज निकालता? आप इतना तो सोचिये! आप समर्थ हैं और मैं तो कमज़ोर हूँ ही। मुझ से नहीं बन पाता इसलिये तो आपकी शरण आया, अब भी मुझे कुछ करने को रहता हो तो आपका क्या वजूद? आप कमज़ोर ही कहलायें न? आप समर्थ कैसे कहलाये? क्योंकि समर्थ तो सबकुछ कर सकें।

यह तो गुरु में बरकत है नहीं, इसलिये सामनेवाले व्यक्ति को बोझ होता है। गुरु में बरकत नहीं है,

इसलिये सामनेवाले व्यक्ति का दोष निकाले। पति में बरकत नहीं रहती तभी बीवी का दोष निकाले। 'कमज़ोर शौहर बीवी पर ज़ोर दिखाये।' ऐसी कहावत चलती है संसार में। उसी प्रकार ये गुरु कमज़ोर है, इसलिये शिष्यों पर ज़ोर दिखाते हैं। शिष्यों को आड़े हाथों लेते हैं कि, 'तुम से कुछ होता नहीं है।' तब आप क्यों यहाँ बड़े गुरु बनकर आये हैं? अरे! बिना वजह शिष्यों को क्यों धमकाते हैं? वे बेचारे दु:खी हैं इसलिये तो आपके पास आये हैं और आप ऊपर से उन्हें धमकाते हैं? घर पर बीवी धमकाये और यहाँ आप धमकायें, तब इसका अंत कैसे आयेगा फिर?

गुरु तो वह कि जो शिष्य को नहीं धमकाते, शिष्य की रक्षा करें, शिष्य को आसरा दें। इन कलियुग के गुरु तो गुरु ही कैसे कहलायें? सारा दिन शिष्यों को डाँटते रहें, टोकते रहें। यह रास्ता ही नहीं है न?

परमार्थ हेतु क्रोध से बँधे पुण्य

भगवान ने बताया है कि जो परायों के लिये क्रोध करता है, परमार्थ हेतु क्रोध करता है, उसका फल पुण्य होता है।

अब इस क्रमिक मार्ग में तो शिष्य डरते ही रहें कि, 'अभी कुछ कहेंगे, अभी कुछ कहेंगे।' और गुरु भी सुबह के पहले प्रहर से अकुलाये-अकुलाये बैठे होते हैं। मतलब दसवें गुणस्थान तक यही भेष बनाये होते हैं। आँख लाल करें इसलिये भीतर अगन जले! ऐसी वेदना, कितनी वेदना सहनी पड़ती होगी? ऐसे कैसे पहुँच पाये? मतलब मोक्ष में जाना कोई यों ही लड्डु खाने का खेल नहीं है! यह तो कभी-कभार अक्रम विज्ञान प्राप्त होता है!!!

गुरु को स्वार्थ नहीं होना चाहिए

कलियुग के कारण गुरु में कोई सत्त्व होता नहीं है। क्योंकि वे आप से अधिक स्वार्थी होते हैं। वे अपना काम निकालने के चक्कर में हैं, आप अपना काम निकालने के चक्कर में हैं। गुरु-शिष्य का रिश्ता ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : बुद्धिमान लोग कई बार ऐसे खोटे गुरुओं को सालों तक ऐसा मानकर चलते हैं कि यही सच्चे गुरु हैं, ऐसा क्यों?

दादाश्री : वह तो सारे लालच होते हैं। बहुतेरे लोग तो मारे लालच के ही गुरु करते हैं।

आज के ये गुरु तो कलयुग के गुरु कहलायें। किसी न किसी ताक में ही रहते हैं। पहले से सोच लें कि क्या काम में आयेंगे? शायद कोई डॉक्टर वहाँ पर जाये न, तो उसे देखते ही मन में सोचे कि कभी काम आयेंगे, इसलिये 'आइये, आइये डॉक्टर, कहेंगे।' अरे! तेरे क्या काम के है? 'बिमार होने पर कभी काम आये न?' मतलब सभी ताक में रहनेवाले कहलायें। उनके पास हमारा काम नहीं होनेवाला कभी। जो ताक में नहीं हो, जिन्हें कुछ भी नहीं चाहिए, वहाँ पर जाना। ये ताक में रहनेवाले तो, वे स्वार्थी और हम भी स्वार्थी! गुरु-शिष्य में यदि स्वार्थ रहा तो वह गुरुपन भी नहीं है और शिष्यपन भी नहीं है। स्वार्थ नहीं होना चाहिए।

यदि हम शुद्ध हैं तो गुरु से बोल दें कि, 'साहब, जिस दिन मुझे आप में स्वार्थ दिखाई दिया, उस दिन में यहाँ से चलता बनूँगा। दो गालियाँ भी सुनाकर चला जाऊँगा। मतलब आप मुझे साथ रखना चाहें तो रखिये। हाँ, खाना-पीना यदि आपको चाहिए तो आपको अड़चन नहीं आने दूँगा। पर आपको स्वार्थ नहीं रखना है।'

हाँ, बिना स्वार्थ के गुरु चाहिए। पर आज तो लोभी गुरु और लालची चेला। दोनों साथ मिले तो क्या गत बनेगी? फिर ''दोनों खेलें दाँव'' ऐसी चलती रहे!

मूल में लोग लालची हैं, इसलिये इन सब धूर्त लोगों की चलती रहती है। सच्चा गुरु धूर्त नहीं होता। ऐसे सच्चे हैं अभी। नहीं है क्या ऐसे? यह दुनिया कुछ

खाली नहीं हो गई, पर ऐसे मिलना दुशवार है न? पुण्यवंतों को मिले न?

भेद, गुरु-शिष्य के बिच

प्रश्नकर्ता : आम तौर पर बाहर गुरु-शिष्य के बिच अंतर होता होगा न कि एकाकार रहते होंगे?

दादाश्री : यदि एकाकार हो तब तो दोनों का कल्याण हो जाये। पर शिष्य से गिलास फूट जाने पर गुरु बिना चिढ़े रहता नहीं। बाकी गुरु-शिष्य दोनों यदि ऐसे पुण्यवंत हो और दोनों एकाकार रहें तो दोनों का कल्याण हो जाये। पर ऐसा रह नहीं पाते। अरे! घडी भर के लिये खुद को अपने आप के ऊपर भी विश्वास रहे नहीं ऐसा जगत् है, तो शिष्य का विश्वास तो आता होगा कहीं? और यदि एक दिन दो गिलास फोड़ डाले तो गुरुजी आँख लाल करते रहें।

देखिये मुसीबतें, सारा दिन मुसीबतें! और गुरु से कहते तक नहीं कि, 'साहब, मेरी मुसीबतों को ले लीजिये न आप।' हाँ, ऐसा भी पूछ सके कि, 'साहब, आप बड़े आदमी होकर क्यों चिढ़ते हों?'

प्रश्नकर्ता : पर हम से कैसे पूछा जाये गुरु से? हम पूछ तो नहीं सकते न गुरु को?

दादाश्री : गुरु को पूछे नहीं तो फिर गुरु का क्या काम है? शिष्य के साथ मतभेद होता हो तो नहीं समझ सकते कि आपको शिष्य के साथ मतभेद होता है तो आप गुरु कैसे? यदि एक शिष्य के साथ आप सीधे नहीं रहते हैं तो दुनिया के साथ आप कैसे सीधे रहेंगे? वैसे सभी को बोध करें कि, 'झगड़ा मत करना।' पर आपको तो न कोई सगा है, न कोई संबंधी, अकेले हैं फिर भी आप शिष्य के साथ किस लिये क्लेश करते हैं? आपकी कोख से जन्म तो लिया नहीं है, तो आप दोनों के बिच कषाय किस लिये हैं? कषाय तो यह व्यवहारी लोगों को होता है। पर यह तो बाहर से आकर बेचारा शिष्य हुआ है, उस पर कषाय करते हो?

किताब इधर-उधर रख दी हो तो गुरु क्या बोले? कितने ताने कसे कि, 'तेरे में अक्ल नहीं है। तुझे भान नहीं रहता।' तब शिष्य क्या कहे? 'किताब मैं खा थोड़े गया हूँ? यहाँ-वहाँ पड़ी होगी, आपके थैले में नहीं होगी तो खटिया के नीचे होगी।' शिष्य भी 'मैं खा थोड़े गया हूँ?' ऐसा बोले। इसकी तुलना में तो घर की झंझट भली। ऐसा शिष्य बनने से जोरू का शिष्य होना ताकि लड़ने के बाद फिर पकोड़े तो खिलायेगी! कुछ स्वतंत्रता तो चाहिए न? ऐसा गुरु मिले, इतनी चाकरी करने के बाद यदि इतना सारा सुनाये तो क्या करना?

प्रश्नकर्ता : जोरू के लड़ने में स्वार्थ होता है जब कि गुरु तो नि:स्वार्थ रूप से लड़ते हैं, उन दोनों में अंतर नहीं क्या?

दादाश्री : गुरु नि:स्वार्थ नहीं होते। जगत् में नि:स्वार्थ मनुष्य कोई होता नहीं है। दिखने में वह नि:स्वार्थ अवश्य लगे मगर यहाँ से, वहाँ से वैसे स्वार्थ की तैयारी में ही लगा होता है। वे सब स्वार्थी, सब पोलम्पोल है। वह तो जिसे समझ में आ जाये, वह पहचान जाये।

शिष्य और गुरु दोनों लड़ते ही रहते हैं, सारा दिन दोनों की जमी ही रहती है। हम गुरु से मिलने जायें और पूछे कि, 'यह सब क्या है?' तब वह कहे, 'वह अच्छा नहीं, शिष्य इतना बुरा मिला है कि मत पूछो।' यह बात बनाये बिना फिर हम शिष्य से पूछें कि, 'क्यों भैया, क्या था?' तब वह कहे, 'यह गुरु ही दुष्ट मिले हैं, बहुत बुरे मिले हैं।' इसमें किसकी बात सच्ची? मगर इसमें उनका कसूर नहीं है, क्योंकि काल ही ऐसा आया है। इसलिये काल को लेकर यह सब खड़ा हुआ है। मगर ऐसा काल आने पर ज्ञानी पुरुष होते हैं।

शिष्य को चाहे कितना भी क्यों नही आता हो, पर ये सब गुरु ऐसे ही मिलनेवाले है न? कलयुग के गुरु कैसे होते हैं? शिष्य कहेगा कि, 'मैं तो अज्ञानी

हूँ, मैं कुछ नहीं जानता।' तब भी वे इस बैचारे को मारते रहें, आगे बढ़ने नहीं देते। ऐसे गुरु मरते दम तक भूल निकालते रहें और शिष्य को परेशान-परेशान कर डालें, कचूमर निकाल दें। पर इस बिच शिष्य को संभालनेवाले गुरु भी होते हैं। मगर आखिर में बारूदखाना समझना, एक दिन फोड़े बिना नहीं रहनेवाले।

इस काल में शिष्यों में सहनशक्ति नहीं है, गुरु में ऐसी उदारता नहीं है। वर्ना गुरु में तो बड़ी उदारता चाहिए, मन बहुत उदार होना चाहिए। शिष्य का सब कुछ चला लेने की उदारता होनी चाहिए।

बिना स्वार्थ के, इसलिये नहीं माने

तेरहवें साल गुरु महाराज ने दी हुई कंठी टूट गई। तब मैं ने देखा था, वे (पान खाकर) पिचकारियाँ मारते थे। उनके सब रंग-ढंग मैं ने देखे थे। उस तेरह साल की उम्र में मेरी बुद्धि ऐसी कि यह सब क्या है, वह मैं ने देखा था। कंठी बाँधने के लिये फिर अपने पर ठंडा पानी उँडेलते। छोड़ मूए, तेरी कंठी का मुझे क्या करना है ? बाद में वही महाराजवाले मेरे यहाँ आकर मेरे फॉलोअर (अनुयायी) हुए।

कहाँ फर्स्ट स्टैन्डर्ड, पहली जमात के मास्टर! मैं किसी को माननेवालों में से नहीं न? ममतावाले माने। स्वार्थवाला माने। जिसको ममता ही नहीं है, वह क्यों मानने लगा? मुझे बिलकुल स्वार्थ नहीं और ममता भी नहीं। अहंकार अकेला ही, वह भी पागलों जैसा अहंकार। वह भी यदि सयाना होता तो अच्छा कहलाये। वह ब्याहने योग्य होता है। यह तो किसी से भी ब्याहा नहीं जाये, ऐसा पगला अहंकार।

यथार्थ ज्ञान से छूटे देहाध्यास

सारा संसार देहाध्यास में लीन है। कहते हैं सही कि यह देह मेरी नहीं है, मन मेरा नहीं है, पर यदि ऐसा कहा जाये कि, 'चंदुलाल, आप में अक्ल नहीं है', तो सारी रात इफेक्ट (असर) रहेगा। जहाँ तक आत्मज्ञान नहीं होता वहाँ तक देहाध्यास टूटे ऐसा नहीं है। मैं चंदुलाल, मैं इसका मामु, इसका चाचा, इसका पति, इसका बाप यही देहाध्यास। जहाँ तक देहाध्यास टूटे नहीं वहाँ तक स्थूल और सूक्ष्म लगाव रहे। शुभ और अशुभ रहे। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' इसका यथार्थ ज्ञान होने पर देहाध्यास टूटे, फिर इकलौते बेटे की मौत होने पर भी द्वन्द्व नहीं होता, पंचिंग नहीं होता। अच्छा या बुरा ऐसा नहीं रहता।

जैसा देहाध्यास हुआ है ऐसा आत्माध्यास होना चाहिए। गहरी नींद में भी आत्मा का भभन रहना चाहिए। हम करवाते हैं उस ज्ञान से सभी अवस्थाओं में आत्माध्यास ही रहता है। यह तो अजायब ज्ञान है! जैसे दही को मथने के बाद माखन और छाछ अलग ही रहते हैं, उसी तरह यह ज्ञान है! देह और आत्मा दोनों अलग-अलग ही रहते हैं।

पहले से ज्ञानी, कोल्हू में खुद को पेर-पेर कर (मोक्ष में) गये थे। यह सोचकर कि तू यदि आत्मा है तो देह को कोल्हू में पेराना हो तो पेराने दे। देह का तेल निकालना हो तो तेल निकालने दे। आत्मा तो पेरानेवाला नहीं है। ऐसी कसौटी में से पार उतरे थे!

कषाय कराये संसारी स्वार्थ

क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, उससे स्वार्थ खड़े रहते हैं। इसलिये भान नहीं है कि किसका मरण होता है और किसका जन्म होता है। यह तो बिलीफ ही रोंग हो गई है। पर लम्बे अरसे के बाद आगे बढ़ते-बढ़ते 'ज्ञानी पुरुष' मिलने पर भान होता है कि जन्म-मरण तो अवस्थाएँ हैं।

स्वार्थ नहीं वहाँ व्यवहार रमणीय

प्रश्नकर्ता : दादाजी, व्यवहार में जो भीतरी जलन हुआ करे वह दुतकार कहलाये न?

दादाश्री : वह तो उसके साथ रमणीय व्यवहार नहीं है इसलिये ऐसा होगा, यहाँ व्यवहार में हम किसी

को लड़ते हो पर उसमें हमारा निजी स्वार्थ बिलकुल नहीं होता है, इसलिये तो हमारा व्यवहार रमणीय होता है। उसका फल सुंदर आता है। पर यदि स्वार्थ हेतु लड़ें, पक्षपात हेतु लड़ें उसका फल कड़वा आता है। हमारा व्यवहार रमणीय होता है, तो बिना कार्य किये यश मिलता है। यों ही मात्र कदम रखने से परिवर्तन हो जाता है, वह पूर्व भव का रमणीय व्यवहार है। अब तो हमें जितना और जैसा व्यवहार शेष है उसे मिटा देना है। हमें अब नया व्यवहार कहाँ करना है? अब तो आपको व्यवहार के ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंद में रहना है।

स्वार्थ वहाँ ममता

जहाँ खुद का स्वार्थ है, जहाँ पर कुछ ममता है वहाँ कोई कल्याण नहीं होता। ज़रा-सी भी ममता रही वहाँ कल्याण नहीं होता। जहाँ ममता नहीं होती वहाँ भगवान प्रकट हो जाते हैं। ममता को लेकर ही अहंकार खड़ा रहा है।

प्रश्नकर्ता : क्या ममता के कारण अहंकार हो और अहंकार को लेकर राग हो यह संभव है?

दादाश्री : नहीं, ममता को लेकर ही यह सब खड़ा रहा है। 'आइ' परमात्मा है। 'माइ' मतलब ममता। 'आइ' और 'माइ' का 'सेपरेशन' हो गया तो क्या रहा? 'आइ', और वही परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : यदि सभी निर्ममत्व हो जाये तो सब ज्ञानी हो जाये न?

दादाश्री : हाँ, निर्ममत्व होने पर ज्ञानी ही हुआ न? क्योंकि जितने तीर्थंकर हुए वे सारे निर्ममत्व हुए थे। उनको ममत्व नहीं रहा।

प्रश्नकर्ता : यह ममत्व जो होता है वह किस आधार पर होता है?

दादाश्री : लालच के आधार पर, किसी भी लालच के कारण।

प्रश्नकर्ता : वह सब पिछले जन्म के किये के कारण होता है क्या?

दादाश्री : ऐसा तो आप यह ''ज्ञान'' में आने के बाद समझे कि यह पिछले जन्म का किया है। संसार के लोगों को तो इसकी समझ नहीं है। वह लालच है उनका। जाहिर, खुला लालच दिखाई दे और लालच होगा वहाँ ममता अवश्य होगी ही। हमें लालच पहले से नहीं था, मान बहुत था।

प्रश्नकर्ता : मतलब यह जो अहंकार खड़ा है, वह लालच और ममता को लेकर ही खड़ा है?

दादाश्री : 'माइ' को लेकर 'आइ' खड़ा है। वर्ना 'आइ' के 'क्लीअर' होने पर परमात्मा ही है। 'आइ' जहाँ तक 'माइ' के साथ है वहाँ तक अहंकार है। जिसका 'माइ' गया उसका अहंकार गया, वह परमात्मा हुआ! दीये जैसी स्पष्ट बात है।

दादाजी प्रति स्वार्थ, वही परमार्थ

आपने लालच देखा है?

प्रश्नकर्ता : अरे! हम ही लालची थे न?

दादाश्री : ऐसा? किस बाबत में?

प्रश्नकर्ता : अरे! किसी भी बाबत में, सत्संग की बाबत में लालची ही थे न?

दादाश्री : यह मेरे प्रति लालची को लालची नहीं कहते। अन्य सभी बाबतों में लालची कहलाये। यहाँ लालची नहीं कहलाये। मेरे साथ तो आपका स्वार्थ भी नहीं कहलाता। मेरे साथ आप जो स्वार्थ रखें उसी का नाम ही परमार्थ। और जगत् के साथ परमार्थ करें तब भी स्वार्थ है। वहाँ परमार्थ करेंगे तब भी आपका स्वार्थ है। इसलिये लोग मुझसे पूछे, 'दादाजी आपके प्रति स्वार्थ कैसे रखा जाये?' (ऐसा करना क्या सही है?) अरे! स्वार्थ परायणता रखने को ही मैं आपसे कहता हूँ। मेरे साथ स्वार्थ रखना। वही परमार्थ गिना जाता है।

प्रश्नकर्ता : मैं यहाँ आया, बरबस खींचा आया हूँ पर ज्ञान प्राप्त करने के लालच वश ही आया हूँ न?

दादाश्री : ऐसा लालच सबसे अच्छा! वह लालच उत्तमोत्तम!! यदि यह लालच कोई नहीं रखता न, तो हम उसे कहतें कि, 'थोड़ा कच्चापन है आप में, पक्के नहीं हैं आप?' इसका लालच तो करने योग्य है। बाकी संसार की किसी चीज़ का लालच करने जैसा नहीं है। लालच तो इसी का रखने जैसा है। आपने लालच किया यह उत्तम कार्य किया है!

प्रश्नकर्ता : पर इसे ज्ञान का लालच कहलाये क्या?

दादाश्री : लालच तो किस हेतु है इसे देखा जाता है, क्योंकि यदि हेतु अच्छा रहा तो लालच तो बहुत अच्छा काम करता है।

प्रश्नकर्ता : यह शुभ हेतु लालच है, ऐसा कहा जाये न?

दादाश्री : शुभ हेतु नहीं, यह पूर्णकाम हेतु लालच है। शुभ हेतु तो, अभी दान करने सिखे कि फलाँ सिखे उसमें हेतु शुभ ही है। फिर बाद में अशुभ हेतु आयेगा। पर जहाँ शुद्ध हेतु है कि जहाँ पूर्णकाम होना है, फिर कोई कार्य शेष नहीं रहे, ऐसा पूर्णकाम स्वरूप होना, वह शुद्ध हेतु है।

आत्मार्थ झूठ फिर भी परम सत्य

प्रश्नकर्ता : परमार्थ हेतु थोड़ा झूठ बोलें तो उसका दोष लगे?

दादाश्री : परमार्थ यानी आत्मार्थ हेतु जो कुछ किया जाये उसका दोष नहीं लगता है। देह के लिये जो कुछ किया जाता है, गलत किया जाये तो दोष लगे और अच्छा करने पर गुण लगे। आत्म हेतु जो जो कार्य होता है, उसमें कोई दोष नहीं है। सामनेवाले को हमारे कारण दुःख पहुँचे तो दोष लगता है।

झूठ बोलकर भी आत्मा संबंधी करते हैं तो हर्ज नहीं है और सत्य बोलकर भी यदि देह का हित करते हैं तो हर्ज है। सत्य बोलकर भौतिक हित करेंगे तब भी हर्ज है। पर झूठ बोलकर आत्मा हेतु करेंगे, तो हितकारी है।

स्वार्थ हेतु शब्दों से हनन वचनबल का

प्रश्नकर्ता : वचनबल कैसे प्राप्त होता है?

दादाश्री : लोग मुझ से पूछते हैं कि, 'आप में वचनबल है और हमारे में वचनबल क्यों नहीं है?' पूछेंगे कि नहीं पूछेंगे? इसका उत्तर आप्तसूत्र में लिखा है, पढिये ज़रा।

प्रश्नकर्ता : 'एक भी शब्द मसख़री हेतु प्रयोग नहीं किया हो, एक भी शब्द गलत स्वार्थ हेतु, किसी से कुछ झपट ने के लिये प्रयोग नहीं किया हो, वाणी का दुरुपयोग नहीं किया हो, अपना मान बढ़ाने हेतु वाणी प्रयोग नहीं किया हो तब उसे ऐसा वचनबल सिद्ध होता है।' (आप्तसूत्र-1892)

दादाश्री : यह जवाब आपकी समझ में आता है? जवाब बराबर लगता है? इसके अनुसार करने पर खुद को फ़ायदा नहीं होगा क्या? भले ही अज्ञान दशा में हो मगर इसके अनुसार करने पर वचनबल अवश्य उत्पन्न होता है।

मसख़री से टूटे वचनबल

प्रश्नकर्ता : अपने मान हेतु और स्वार्थ हेतु बराबर है पर मसख़री की उसमें क्या हर्ज है?

दादाश्री : मसख़री करना तो बहुत गलत कहलाये। क्योंकि मसख़री भगवान की हुई कहलायें। उसकी तुलना में मान दिया तो अच्छा। आपको ऐसा लगे कि यह तो गधे जैसा मनुष्य है, पर 'आफ्टर ऑल' वह क्या है, इसकी तलाश कर लीजिये। 'आफ्टर ऑल' तो वह भगवान ही है।

प्रत्येक जीव में भगवान ही बसे है न? मसख़री

किसी की नहीं कर सकते न? हमारे हँसने पर भगवान समझें कि, 'हाँ, अब आ जा, इस बार तेरा हिसाब बराबर कर देता हूँ।'

कोई लँगडाता हुआ चलता हो और हमारे लोग उसकी हँसी उड़ायें। 'अबे! क्या मसख़री करता है?' भीतर में भगवान सब समझ गये! 'उसकी ऐसी दशा हूई उसकी मसख़री करता है तू, ऐसा? तेरी दशा भी ऐसी ही होगी।' ऐसा नियम ही है। इसलिये इन दशाओं से संभलकर रहें।

प्रश्नकर्ता : मुझ से तो बड़ों की मसख़री हो जाती है।

दादाश्री : ऐसा है कि आपको तो आज इस बात का पता चला कि मसख़री करना गुनाह है, मैं तो छोटी उम्र में जानता था, फिर भी आठ-दस साल तक मसख़री होती रही। आपकी यह आदत तो फर्राटे से चली जायेगी।

फिर भी ऐसी मसख़री करने में हर्ज नहीं है जिसमें किसी को दुःख नहीं होता हो और सबको आनंद मिलता हो। उसे निर्दोष गम्मत कहते हैं। ऐसा तो हम आज भी करते हैं, क्योंकि आदत से मज़बूर न? पर उसमें निर्दोषता ही होती है।

वचन का विनाश ऐसे...

प्रश्नकर्ता : आप्तसूत्र १८९३ - ''खुद की 'सेफसाइड' (सलामती) हेतु झूठ बोलोगे तो वचनबल कैसे रहेगा?''

दादाश्री : हाँ, खुद की 'सेफसाइड' हेतु झूठ बोलना हुआ तो वचनबल फिर कैसे उत्पन्न होगा? वचनबल किसका होता है? जिसे जगत् संबंधी कोई स्पृहा नहीं होती। फिर चाहे आत्मा भले ही प्राप्त नहीं किया हो पर थोड़ा-बहुत वचनबल होता है। वचनबल क्यों चला गया है? यह वाणी का दुरुपयोग किया इसलिये। लोगों को परेशानी में डाला, लोगों को धमकाया, कुत्तों को डराया, प्रपंच किये इस कारण वचनबल टूट गया है। स्व बचाव में झूठ बोलने पर, सत्य का आग्रह और दुराग्रह करने पर वचनबल टूट जाता है। इससे सारी वाणी कमज़ोर पड़ जाती है, वीक होती जाती है। 'वीक' हो जाने पर फिर अहंकार करके कार्यकारी करनी पड़े कि, 'जाना ही पड़ेगा, करना ही होगा।' बाकी ऐसे सहजरूप से कार्यकारी नहीं होती।

वचन सिद्ध तो करना पड़ेगा न? वचनबल हेतु वचन के नियमों में तो आना पड़ेगा न? यह तो झूठ बोलकर, ठगकर वाणी को जिसने व्यभिचारिणी बनाई है, उसकी कौन सुनेगा?

लड़के को झिड़काये, 'सीधा बैठ।' इसलिये बच्चों के पास वचनबल नहीं रहता। यदि वाणी ऐसी निकले कि सामनेवाले के हृदय पर घाव करे तो दूसरे भव में समूची वाणी बंद हो जाये, दस-पंद्रह साल गूँगा रहे।

केवल सत्य ही बोलें और फिर सत्य का आग्रह नहीं रखें तो वचनबल फिर से उत्पन्न होता है। यदि वाणी का दुरुपयोग होगा तो वचनबल उतर जायेगा। झूठ बोलकर खुद का बचाव करें, इसलिये तो मन, वाणी सब फ्रेक्चर हो जायें। सत्य बोलें मगर उसके पीछे भावना कितनी जबरदस्त होनी चाहिए।

वाणी का गलत-उल्टा उपयोग करने पर वचनबल जाता रहे। वाणी का किसी प्रकार अपव्यय नहीं हो, वाणी को किसी प्रकार विभाविक स्वरूप में नहीं ले जायें तो वचनबल उत्पन्न होता है।

जितना तेरी समझ में आये उतना सत्य बोलना। समझ में नहीं आता वहाँ नहीं बोलने में हर्ज नहीं है। तो उतना वचनबल उत्पन्न होगा। ''किसी को दुःख हो ऐसा नहीं बोलना है'' ऐसा तय करना और 'दादाजी' से वचनबल के लिये शक्ति माँगते रहना, इससे वचनबल प्राप्त होगा। हमारा वचनबल और आपकी दृढ़ इच्छा होनी चाहिए। हमारा वचनबल आपके सारे अंतरायों को दूर कर दे। आपकी कसौटी

हो, पर पार उतारे।

नहीं स्वार्थ वहाँ सच्ची हक़ीकत

नामकर्म के साथ यशनामकर्म होता है। कोई (औरों के लिये) इतने चक्कर काटे और हम से आकर कहे कि, 'मैं उसके लिये इतने चक्कर काटता हूँ फिर भी मुझे अपयश ही मिलता है।' मुए, तू आया ही है अपयश लेकर, फिर अपयश ही मिलेगा न? अक्करमी, तू चाहे जितने भी चक्कर काटे पर तुझे अपयश ही मिलेगा, तुझे यश नहीं मिलनेवाला। और कोई यशनामकर्म लेकर आया होगा न, तो कुछ भी नहीं करने पर यश मिलता रहेगा। मतलब जो लेकर आये हो वही मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : अन्य संतों की तरह आपके पास भी मैं ने अनेकों चमत्कार की घटनाएँ देखी हैं। उनमें से कुछ मेरे खुद के अनुभव में भी आये हैं। जिन्हों ने आपको कभी देखा नहीं हो ऐसे कइयों को आपकी फोटो से ऐसे चमत्कारों का अनुभव हुआ है, तो आपके पास वह ऐसा क्या है?

दादाश्री : मेरे पास चमत्कार है ही नहीं। मैं जादूगर नहीं हूँ। मैं तो ऐसा कोई चमत्कार नहीं करता हूँ।

प्रश्नकर्ता : तो वह सब कैसे होता है?

दादाश्री : हम तो ज्ञानी पुरुष इसलिये हमारा यशनामकर्म बहुत उच्च कोटि का होता है, ताकि हाथ लगने पर ही उसका काम हो जाता है, और वह कहे कि दादाजी ने यह कर दिया। मैं ने किया ही नहीं होता। केवल छूने से ही काम हो जाये।

और अपयशनामकर्म माने क्या ? आप काम करें तब भी अपयश मिले और मैं कुछ भी नहीं करूँ तो भी यश मिलता रहे। मतलब मैं कुछ करता नहीं हूँ मगर लोग बिना वजह यश दिया करते हैं, यह यशनामकर्म है एक तरह का, जिसे लोग चमत्कार मानते हैं। चमत्कार जैसी कोई चीज़ इस दुनिया में है ही नहीं, इसकी मैं हन्ड्रेड परसेन्ट की गारन्टी देता हूँ।

प्रश्नकर्ता : आप ऐसा कहते हैं यही बड़ा चमत्कार है। और सभी तो अपने सिर ले लें कि हाँ, हमने...

दादाश्री : वे अन्य सभी को कुछ स्वार्थ रहा है, कुछ न कुछ स्वार्थ रहा है। मैं तो, प्योर ही जो है वह फेक्ट वस्तु (हक़ीकत) बतलाने आया हूँ। मैं जो 'है' उसे 'नहीं है' ऐसा नहीं कहूँगा। जो 'नहीं है' उसे 'है' ऐसा भी कभी मैं अपने मुँह से नहीं बोलूँगा।

प्रश्नकर्ता : पर दादाजी, वे जो संतपुरुष होते हैं, जिनको ऐसी सिद्धि होती है, उनकी कृपा से सामनेवाले को अच्छा कर देते हैं तो ऐसा अहंकार को लेकर ही करते है न?

दादाश्री : नहीं, यह तो ऐसा है न कि संतपुरुषों को सदैव यशरेखा होती है। यश इतना बड़ा होता है, कि अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार यह यश काम करता रहता है। किसी को अपयश होता है और किसी को यश होता है। इसलिये यश इतना बड़ा कार्य करता है कि हाथ लगाते ही लाभार्थी का काम हो जाये। इसे यशनामकर्म कहते हैं। मनुष्य से और कुछ बन पड़े ऐसा नहीं है। इन ज्ञानिओं से कुछ होता नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : नहीं, मगर कई ऐसे भी संतपुरुष होते हैं, जो अपनी कृपा से दूसरों का रोग मिटा देते हैं।

दादाश्री : वह कृपा, वही यशनामकर्म। ऐसा जिनको है उनको है, औरों को नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : जिनको उपलब्धि हुई हो उनको ही होता है?

दादाश्री : हाँ, हमारे पास ऐसा-वैसा कुछ नहीं होता है। हमारे पास तो बस इतना ही कि सभी प्रकार

का यश है। इसलिये तू अपने आप नाम बोलते रहना, तेरा काम हो जायेगा। हमें उसमें लेना-देना नहीं है और यशनामकर्म पूर्ण रूप से है। कुछ नहीं किया हो तब भी यश तो आ ही धमकता है क्योंकि नामकर्म बहुत उच्च कोटि का लाया हूँ। आदेय नामकर्म, यशनामकर्म, सभी तरह के नामकर्म उच्च कोटि के लेकर आया हूँ।

दूसरों की भूल दिखे अपने स्वार्थ से

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' के अलावा सारे संसार के लोगों की बातें अपने 'व्यू पॉइन्ट' से ही होती है न?

दादाश्री : लोगों की बातें अपने 'व्यू पॉइन्ट' से ही होती है और वह 'व्यू पॉइन्ट' सही हो तो ठीक है, उसकी समझदारी से सही होती है। अब वहाँ सुनना, हामी भरना और दिन गुजारना। जितना सही हो उतना परिणाम फलदायी।

प्रश्नकर्ता : वह जो कहे उसे सुनना पड़े, हामी भरनी पड़े और दिन गुजारने पड़े, यह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : वह जो कहे उसमें हम 'ऑबस्ट्रक्ट' (रूकावट) नहीं करें। मानों सच मानकर बैठे हों ऐसे सुनना पड़े हमें। और अन्य सारी बातें तो हमारे हाथों में होती हैं न? हमें तो सम्यक् पर आधार रखना है। सम्यक् की सूई किस ओर जाती है? 'सिन्सिअर' तो, उसकी सुने उतने तक 'सिन्सिअर'। उसकी बात सुने, उसमें 'ऑबस्ट्रक्ट' नहीं करे।

सब अपनी-अपनी भाषा में बात करें न? और मैं भी ऐसा कहूँ कि उनकी भाषा में वे जो कहते हैं वह 'करेक्ट' (सही) है। पर मेरी भाषा में मेल ही नहीं मिलनेवाला न?

प्रश्नकर्ता : आपकी भाषा में कैसा होता है? वह निरंतर का शुद्ध उपयोग कैसा होता है?

दादाश्री : ऐसा तो आपने देखा तक नहीं, सुना तक नहीं।

प्रश्नकर्ता : उसके बारे में थोड़ा बताइये न?

दादाश्री : नहीं, वह जबानी नहीं कहा जाये। वह तो अनुभव की वस्तु है। वह तो अपने आप आकर खड़ा हो जाये। इस समय तो यह स्थूल सूझ होती है, स्थूल! वह सूक्ष्मतम होता है! अब सब अपनी-अपनी भाषा में ही बात करेंगे न? आप सूक्ष्मतम को समझते हों, वह स्थूल बता रहा हो। अब वह सूक्ष्मतम थोड़े ही समझनेवाला है, वह तो स्थूल ही बतायेगा न?

यह ज्ञान जो हम से सुना है न, वह ज्ञान ही काम करता रहे। हम जिस रास्ते पर चले हैं उस रास्ते का ज्ञान आप सुनते हैं, वह रास्ता ही आपका काम निकाल देगा। आप तो बस कहें, 'दादाजी, आपके पीछे-पीछे आना है।' मतलब फिर हम हमारा रास्ता आपको दिखा दें।

'मेन लाइन' पर आ गये इसलिये हर्ज नहीं न? गाड़ी दूसरी पटरी पर दौड रही थी इतना समझे न, तब भी हल निकल आये। बिना जाने पड़ा रहे तब मुश्किल। वह तो ऐसा ही समझे कि हमारी भूल नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ऊपर से ऐसा समझे ?

दादाश्री : हाँ, फिर ऊपर से रक्षण करे। मगर अन्य किसी की भूल दिखाई दी तो वह हमारी ही भूल है। उसकी भूल उसे देखनी है। अन्यों को उसकी भूल देखने का क्या अधिकार? यह तो बिना वजह न्यायधीश होते हैं। कोई भूल है या नहीं इसका विश्वास तक नहीं है तो फिर क्यों बोलते हो? यह तो अपने स्वार्थ वश बोलते हो। सामने वाले की भूल है कि नहीं इसका प्रमाण क्या है?

मतलब यह विज्ञान ही सारे दोष निकालेगा। वर्ना अन्य कोई विज्ञान दोष नहीं निकालने वाला। फिर

ऐसा मौका आने वालाानहीं है इसलिये सावधानी के साथ काम करना बेहतर!

मन में 'लेवल' अपने आप निकालना नहीं, वर्ना मनुष्य (की आंतरिक प्रगति) रूक जाये। अपने आप 'लेवल' मत निकालना, दूसरे निकाल कर दिखाये तभी सार्थक कहलाये।

स्व की पहचान के बाद स्वार्थ

प्रश्नकर्ता : दोषी और स्वार्थी, दोनों में क्या अंतर?

दादाश्री : दोषी अलग वस्तु है। पर स्वार्थी इस संसार में कोई है नहीं। मैं ने नहीं देखा। कोई स्वार्थी मनुष्य, जानवर तक स्वार्थी नहीं है और देवता भी स्वार्थी नहीं है। स्वार्थी तो मैं अकेला था, सो मेरा स्वार्थ निकाल लिया।

स्वार्थ तो किसे कहलाये? स्व के लिये अर्थ। स्व तो जाना ही नहीं है तो स्वार्थ कैसे किया जाये?

प्रश्नकर्ता : इस काल का प्रत्येक मनुष्य 'सेल्फिश' है।

दादाश्री : सारी दुनिया में कोई सेल्फिश मनुष्य मैं ने नहीं देखा। 'सेल्फिश' मैं अकेला हूँ और मेरे साथ दूसरे दस हजार मनुष्य आये हैं, जो सेल्फिश हैं। 'सेल्फिश' माने स्व का अर्थ, स्व माने आत्मा, उसका अर्थ निकाले, वह स्वार्थी कहलाये। और स्वार्थी तो ज्ञानी पुरुष होते हैं। अपना सारा स्वार्थ निकाले और चलते बनें। औरों को स्वार्थी बनायें। आत्मा का अर्थ निकालना वह स्वार्थ कहलाये और देह का अर्थ निकालना वह परार्थ कहलाये। अब आपका कहना ऐसा है कि इस समय यह अपना सच्चा स्वार्थ तो 'खुद का मोक्ष' और 'खुद का स्वरूप' यही है। मैं स्वार्थी बनाता हूँ, लोगों को स्वार्थी होने को कहता हूँ। आपका अर्थ फले। स्वार्थी होने के बाद दुःख नहीं होता।

स्वार्थी में जागृति के बगैर स्वार्थ कहलाये ही नहीं न? स्वार्थ में जागृति उसका नाम ही स्वार्थ कहलाये। स्वार्थ में जागृति नहीं वह तो अभानावस्था कहलाये। संसार में भी अभानावस्था कहलाये। बाकी, वास्तव में यह स्वार्थ है ही नहीं। स्वार्थ माने खुद का अर्थ, मतलब आत्मा का अर्थ। तुम तो देह के अर्थ को स्वार्थ मानते हो। यह तो देहार्थ कहलाता है।

स्वार्थी, परार्थी, परमार्थी

संसार में स्वार्थ का अनुपात बहुत बढ़ गया है। यहाँ किसकी बातें हो रही हैं? यहां परमार्थ की बातें हो रही हैं। परमार्थ हिन्दुस्तान में होता नहीं है। कभी कभार एकाध परमार्थी होता है। परमार्थी पुरुष नहीं होते। सारे दुकानदार (धर्म की बाते करनेवाले) जिसे परमार्थी कहते हैं न, वे परमार्थी नहीं हैं तो स्वार्थी हैं? तब कहे, नहीं, स्वार्थी नहीं है, परार्थी है। स्वार्थी तो नहीं है, क्योंकि बीवी-बच्चों को छोडकर साधु हुए, उसके क्या माने? पर वे परार्थी है, परमार्थी नहीं। परमार्थी तो मोक्ष के प्रति ले जाये, वह परमार्थी पुरुष! परम अर्थ को जो साधे वह! परम अर्थ! तभी वह मोक्ष! और परमार्थ वाणी भी अलग होती है, परम अर्थ का वर्तन अलग होता है। वे वाणी, वर्तन और विनय मनोहारी होते हैं। हमारे मन का हरण कर ले। और ये लोग दुकान लगाकर बैठते हैं और 'हम परमार्थी, परमार्थी' कहते हैं। पर वे परमार्थी या स्वार्थी तो नहीं कहलायें, वे तो परार्थी कहलाये। अपने चार शिष्य होते हैं उनमें रत रहते हैं, पर वे पर हैं न? परार्थी, उसमें तेरा क्या? वर्ना संसारी भी अपने बच्चों के साथ, जो पर हैं, परार्थी जीवन जीते हैं। वह परमार्थी जीवन नहीं है, परार्थी है। जितने भी स्वार्थी लोग इस दुनिया में थे न, वे सारे परार्थ मर गये थे। परायों के लिये सब ज़ब्ती में जाता रहा था। यदि ऐसा परमार्थ हेतु करते तो कितना सयाना, सुहाना हो जाता! परमार्थ हेतु लक्ष्मी खर्च करें तो सार्थक कहलाये। यह तो सब कुछ परार्थ गँवाते हैं।

जय सच्चिदानंद

पूज्य नीरूमाँ को देखिये टी.वी. चैनल्स पर...

भारत ✦ 'दूरदर्शन' (नेशनल) पर सुबह ८-३० से ९ (सोम से शुक्र) 'नई दृष्टि, नई राह'
इसी समय देखिए, तमिलनाडु में तमिल भाषा में... तथा केरल में मलयालम भाषा में...

✦ 'दूरदर्शन' डीडी-१ प्रतिदिन दोपहर ३-३० से ४ (गुजरात में) (अन्य राज्यो में डीडी ११ पर वही समय)

✦ 'आस्था इन्टरनेशनल' प्रतिदिन दोपहर १ से १-३० - (गुजराती में)

U.S.A. : ✦ **'TV Asia' Everyday 7 to 7-30 AM EST (In Gujarati)**

✦ **'TV 39 (NJ)' Mon-Fri 6 to 7 PM & Sat 6 PM to 6-30 PM (In Gujarati)**

Canada: ✦ **'ATN' Every Wed-Thu 8.30 to 9.00 AM EST**

✦ समग्र विश्व में (भारत के अलावा) सोनी टीवी पर (सोम से शुक्र) सुबह ७ से ७-३०, (हिन्दी में)

✦ समग्र विश्व में (भारत के अलावा) 'आस्था इन्टरनेशनल' पर (सोम से शुक्र) सुबह ७-३० से ८

पूज्य दीपकभाई को देखिये टी.वी. चैनल्स पर...

भारत ✦ 'दूरदर्शन' डीडी-११ पर प्रतिदिन रात्रि ९ से ९-३० - 'ज्ञानप्रकाश' (गुजराती में)

✦ 'आस्था इन्टरनेशनल' पर (सोम से शुक्र) रात्रि १२ से १२-३०, (शनि-रवि) दोपहर २ से २-३०

समग्र विश्व में (भारत के अलावा) 'आस्था इन्टरनेशनल' पर (सोम से शुक्र) शाम ६-३० से ७, शनि-रवि सुबह ८-३० से ९

☞ 'दादावाणी' सामायिक हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा में हर महिने की १५ तारीख को प्रकाशित होता है। अगर 'दादावाणी' सामायिक आपको देर से मिलता है, तो कृपया मैग्ज़ीन् के कवर पर अपना नाम-पता-पीनकोड जाँच करें। अगर उसमें कोई गलती नजर आये तो हमें संपर्क सूत्र के पते पर पत्र द्वारा तुरंत सूचित करें। अगर आपको मैग्ज़ीन् नहीं मिलता है, तो हमें पत्र द्वारा सूचित करें। आपका पत्र मिलने पर मैग्ज़ीन् अगर हमारे पास स्टोक में होगी तो दुबारा पोस्ट करने का प्रबंध किया जायेगा।

Form No. 4 (Rule No.8)

Information about 'Dadavani' Hindi Magazine

1. **Place of Publication :** 5, Mamtapark Society, B/h. Navgujarat College, Usmanpura, Ahmedabad-380014
2. **Periodicity of Publication :** Monthly
3. **Name of Printer :** Mahavideh Foundation, **Nationality :** Indian,
   Address : Basement, Parshvanath Chamber, Near New R.B.I. Usmanpura, Ahmedabad-380014
4. **Name of Publisher :** Deepak Desai on behalf of Mahavideh Foundation, **Nationality :** Indian,
   Address : 5, Mamtapark Society, B/h. Navgujarat College, Usmanpura, Ahmedabad-380014
5. **Name of Editor :** Deepak Desai, **Nationality :** Indian, **Address :** same as above.
6. **Name of Owner :** Deepak Desai on behalf of Mahavideh Foundation, **Nationality :** Indian,
   Address : same as above.

I, Deepak Desai hereby declare that the above stated information is correct to my knowledge and belief.

sd/-

Date : 15-03-2007

Deepak Desai on behalf of Mahavideh Foundation
(Signature of Publisher)

भावांजलि

19 मार्च 2007, पूज्य नीरूमाँ ने हम से स्थूल रूप से बिदा ली उसे आज एक साल पूरा होने जा रहा है पर आज भी आत्मज्ञान पाये हुए हरएक महात्मा से पूछने पर सभी एक ही आवाज़ में बोल उठते हैं कि, 'नीरूमाँ हमारे साथ ही हैं!' महात्माओं का यह प्रतिभाव सिद्ध करता है कि आत्मज्ञानीओं की दिव्यता की महक बरसों वातावरण को सुरभित किया करती है। पूज्य नीरूमाँ ने सपनों मे आकर, दिव्य संकेतों के द्वारा, समाधि स्थल और सीमंधर सीटी में अपनी सूक्ष्म हाजिरी का अहसास दिया है। टी.वी चैनलों-वी.सी.डी सत्संगों के माध्यम से और पूज्य दीपकभाई के श्रीमुख से निकलनेवाली ज्ञानवाणी के द्वारा भी पूज्य नीरूमाँ हमारे बीच ही हैं ऐसा बरत रहा है। महात्माओं को भी उनकी व्यावहारिक समस्याएँ, प्रकृति की कमियों में से बाहर निकलने और ज्ञान में प्रगति करने की चाबियाँ और टकोर स्वप्न संकेत के द्वारा पूज्य नीरूमाँ से मिल रहे हैं। पूज्य नीरूमाँ की समाधि पर दर्शनार्थिओं को उनकी सूक्ष्म उपस्थिति का अनुभव होता रहता है। सत्संग के लिए बाहर जाते समय पूज्य नीरूमाँ का संदेश रहता था कि हम सीमंधर सीटी में आपके साथ ही हैं, आज भी सभी को ऐसी ही अनुभूति होती हैं कि 'वात्सल्य' उनकी सूक्ष्म हाजिरी से सभर है। पूज्य दीपकभाई के प्रत्येक सत्संग में सभी ऐसा ही अनुभव करते हैं कि पूज्य दादाजी और नीरूमाँ ही सत्संग दे रहे हैं और उनकी सूक्ष्म हाजिरी से वातावरण दिव्य हो उठता है। टी.वी चैनलों और प्री रिकार्डेड सत्संगों से प्रभावित होकर जनसमुदाय आत्मज्ञान के लिए ज्ञानविधि में दौडा आ रहा है। लाखों लोगों के हृदयासन पर बिराजमान पूज्य नीरूमाँ जगतकल्याण का मिशन पूर्ण करने के लिए हमारे साथ ही हैं ऐसी अनुभूति सदैव सबको बनी रहती है। पूज्य नीरूमाँ को दिये गये वचन के अनुसार पूज्य दीपकभाई सीमंधर स्वामी के मिशन को आगे बढाने के लिए कृतनिश्चय हैं। ध शो मस्ट गो ओन... को लक्ष्य बनाकर जगतकल्याण का यज्ञ पूरे जोश के साथ चला रहे हैं और सत्संग मे कोई कमी नहीं आने दी है। प्रत्येक सत्संग दिनोंदिन भव्यता, दिव्यता और गहनता के नये सीमा चिह्न स्थापित करता जा रहा है।

पूज्य दादाश्री कहा करते थे कि, 'देह रूपी स्थूल दादा को मत पकड़ना, ज्ञानरूपी-आज्ञारूपी दादा को ही पकड़ना।' पूज्य नीरूमाँ को भी यही बात लागू होती है। हम पूज्य नीरूमाँ के द्वारा परोसा गया ज्ञान पकडकर जगत के लोगों तक परम पूज्य दादाश्री का आत्मविज्ञान पहुँचाने का दृढ निश्चय करें। दस लाख साल के बाद प्रकट होनेवाला यह अक्रम विज्ञान सारे जग में प्रसारित होकर लोगों के जीवन में सुख-शांति का अनुभव करते, सारा जगत् आत्यंतिक मुक्ति के पथ पर अग्रसर हो ऐसी पूज्य नीरूमाँ की और परम पूज्य दादाश्री की प्रत्येक भावना को चरितार्थ करने हम सब तन-मन-धन से समर्पित होने का आज के इस अविस्मरणीय दिन पर संकल्प करें। 'शुद्धात्मा' पद में और आज्ञा में रहकर पूज्य नीरूमाँ को विश्वास दिलायें कि हम नत-मस्तक होकर आप से वादा करते हैं कि हम सब साथ-साथ प्रेम से रहेंगे, जीवन में अभेदता अपनाकर आपकी भावना सार्थक करेंगे। आइये सब साथ मिलकर कहें कि,

'प्रेम से है रहना मिलकर साथ,
प्रेम स्वरूप हो अभेद भाव,
आज्ञा में है रहना दिवस-रात,
प्रेम से रहना है मिलकर साथ।'

Pujya Deepakbhai's UK - Spain - USA - Canada Itinenary 2007

MAY			JUNE			JULY		
1	TUE		1	FRI	Leicester	**1**	**SUN**	NJ Shibir
2	WED		2	SAT	Leicester	2	MON	NJ Shibir
3	THU		**3**	**SUN**	Leicester	3	TUE	NJ Shibir
4	FRI		4	MON	Leicester	4	WED	NJ Shibir
5	SAT		5	TUE	Rest	5	THU	Rest
6	**SUN**		6	WED	London	6	FRI	Toronto
7	MON		7	THU	London	7	SAT	Toronto
8	TUE		8	FRI	London	**8**	**SUN**	Toronto
9	WED		9	SAT	London	9	MON	Toronto
10	THU		**10**	**SUN**	London	10	TUE	Travel
11	FRI		11	MON	Rest	11	WED	Wilmington
12	SAT		12	TUE	Travel to Spain	12	THU	Wilmington
13	**SUN**		13	WED	Tenerife - Spain	13	FRI	Raleigh
14	MON		14	THU	Tenerife - Spain	14	SAT	Raleigh
15	TUE	Travel To London	15	FRI	Tenerife - Spain	**15**	**SUN**	Raleigh
16	WED	Rest	16	SAT	Tenerife - Spain	16	MON	Travel
17	THU	Cardiff	**17**	**SUN**	Tenerife - Spain	17	TUE	Dallas
18	FRI	Cardiff	18	MON	Travel To London	18	WED	Dallas
19	SAT	Cardiff	19	TUE	Travel To USA	19	THU	Rest
20	**SUN**	Cardiff	20	WED	Rest	20	FRI	Houston
21	MON	Travel	21	THU	California	21	SAT	Houston
22	TUE	MH Satsang	22	FRI	California	**22**	**SUN**	Houston
23	WED	Rest	23	SAT	California	23	MON	Chicago
24	THU	UK Shibir	**24**	**SUN**	California	24	TUE	Youth Shibir
25	FRI	UK Shibir	25	MON	Reserve	25	WED	Youth Shibir
26	SAT	UK Shibir	26	TUE	Reserve	26	THU	Chicago Gurupurnima
27	**SUN**	UK Shibir	27	WED	Atlantic	27	FRI	Chicago Gurupurnima
28	MON	UK Shibir	28	THU	Atlantic	28	SAT	Chicago Gurupurnima
29	TUE	Rest	29	FRI	NJ Shibir	**29**	**SUN**	Chicago Gurupurnima
30	WED	London	30	SAT	NJ Shibir	30	MON	Chicago Gurupurnima
31	THU	London				31	TUE	Travel to UK
						2-5	**August**	UK Gurupurnima

<u>Contact Persons</u> :

London : Varsha Shah, Tel.:07956 476253
Tel : 0208-864-2833

Leicester : Trusha Nathwani Tel : 0116-220-8081

Spain : Juan Carlos Tel : 34 922 211899

LA : Shirish Patel, Tel : 951-734-4715
: Nanu Patel, Tel : 714-970-1112

Atlantic City, NJ: Bhavesh Gala Tel : 856-753-4252

New Jersey : C.C.Shah Tel : 732-968-6836

Toronto : Dinesh Patel Tel : 416-675-3543

Wilmington : Lalitha Ishwar Tel. : 910-792-9496

Raleigh, NC : Rahul Bhatt Tel. : 919-792-0809

Dallas : Narendra Tarapara, Tel : 817-329-4656

Houston, TX : Shailesh Sheth Tel : 832-646-4696
Kishore Mulani Tel : 713-896-0558

Chicago, IL : Himanshu Patel Tel. : 847-680-3080
Dr.Shashi Patel Tel. : 815-284-3881

पूज्य नीरूमाँ की प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर अडालज त्रिमंदिर पर विशेष कार्यक्रम

दि. १८ मार्च सुबह ६ बजे से १९ मार्च को सुबह ६ बजे तक २४ घंटे की अखंड स्वरूप कीर्तन भक्ति

१९ मार्च - सुबह ८ बजे - पूज्य नीरूमाँ के समाधिस्थल पर कार्यक्रम

सुबह १० बजे - 'निरांत' का उद्‌घाटन

शाम ४-३० से ६ - महात्माओं के अनुभव

रात ८-३० से १० - पूज्य नीरूमाँ के दिव्य जीवनप्रसंगो की अनुपम झांखी दर्शाता हुआ विशेष कार्यक्रम

२० मार्च शाम ४ से ७ - श्री सीमंधर स्वामी भगवान की महात्माओ ने घर-ओफिस के लिए ली हुई प्रतिमाजीयों की प्राणप्रतिष्ठा - पूज्य दीपकभाई की निश्रा में.

पूज्य दीपकभाई के सान्निध्य में होनेवाले सत्संग कार्यक्रम

त्रिमंदिर अडालज

२५ मार्च (रविवार) दोपहर ३-३० से ७ - आत्मसाक्षात्कार पाने के लिये भेदज्ञान का प्रयोग- **ज्ञानविधि**

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

३१ मार्च शाम ६ से ८-३० प्रश्नोत्तरी सत्संग तथा १ अप्रैल (रवि), शाम ५-३० से ९ - **ज्ञानविधि**

स्थल : सीमंत मंगल कार्यालय, अंबा-अप्सरा सिनेमा के पास, औरंगपुरा, औरंगाबाद.

वलसाड

५-६-७ अप्रैल शाम ६ से ८-३० सत्संग तथा ८ अप्रैल (रवि), शाम ५ से ८-३० - **ज्ञानविधि**

स्थल : आवाबाई हाईस्कूल ग्राउन्ड, वलसाड. फोन : ९८२४१००९६१

सुरत

१०-११ अप्रैल रात ७-३० से १०-३० सत्संग तथा १२ अप्रैल (गुरू) शाम ६-३० से १० - **ज्ञानविधि**

स्थल : उमियाधाम मंदिर, सिनेमा रोड, वराछा रोड, सुरत. फोर : ९९२४३४३४५५

भरूच

१४ तथा १६ अप्रैल, रात ८ से १० सत्संग तथा १५ अप्रैल (रवि), शाम ६-३० से १० - **ज्ञानविधि**

स्थल : राजपूत छात्रालय, सेवा आश्रम रोड, पांच बत्ती के पास, भरूच. फोन : ९२२७४०४१८६

इन्दोर (मध्य प्रदेश)

२१ तथा २३ अप्रैल, शाम ६ से ८:३० सत्संग तथा २२ अप्रैल (रवि), शाम ४:३० से ८ - **ज्ञानविधि**

स्थल : रविन्द्र नाट्य गृह, रविन्द्रनाथ टागोर मार्ग, रीगल चोराहा. फोन : ९८९३५४५३५१

अहमदाबाद

२७-२८ अप्रैल, शाम ६ से ८-३० सत्संग तथा २९ अप्रैल (रवि), शाम ५ से ८-३० - **ज्ञानविधि**

स्थलः सरदार पटेल सेवा समाज, मीठाखली छ रास्ते के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद. फोन-२७५४०४०८

वडोदरा

१ मई, शाम ६ से ८-३० तथा २ मई (बुध), शाम ५-३० से ९ - **ज्ञानविधि**

स्थल : सयाजी विहार क्लब, खंडेराव मार्केट के पास, राजमहल रोड. फोन : ९९२४३ ४३४९१

नडियाद

५ तथा ७ मई, शाम ६ से ८-३० तथा ६ मई (रवि), शाम ५ से ८-३० - **ज्ञानविधि**

स्थल : संतराम मंदिर के पीछे के मेदान में, विठ्ठल कन्या विद्यालय रोड, अंबा माताजी के मंदिर के पास, इन्डियन आईल पेट्रोल पंप के सामने. फोन : ०२६८-२५५९३१४, ९२२८२२५०२२